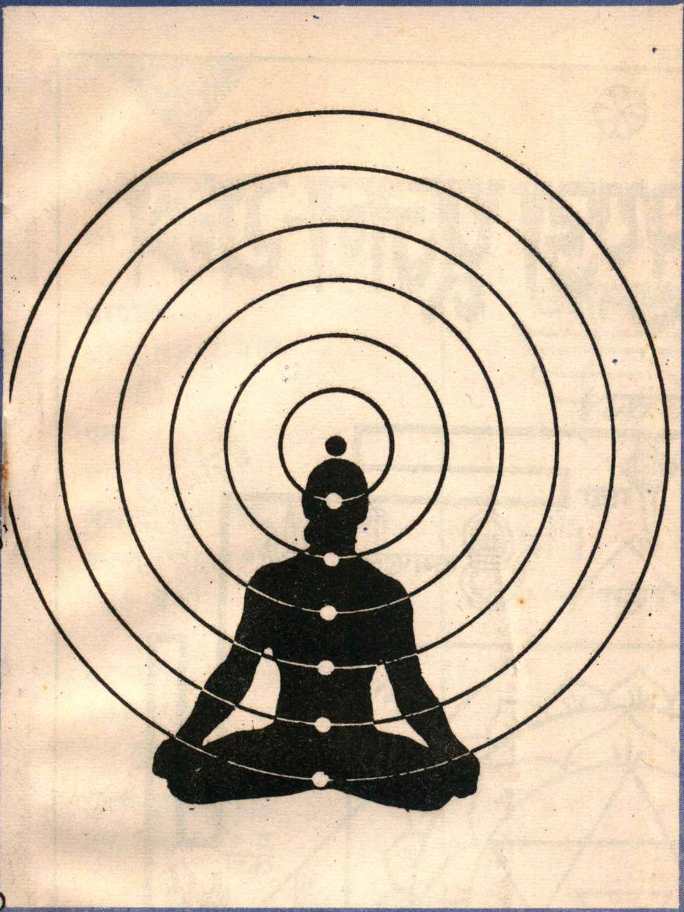

५० वर्षों से प्रकाशित

कौल-कल्पतरु

चण्डी

व्यक्ति, समाज, राष्ट्र
कल्याणार्थ

दश-महा-विद्या
साधना-शिविर
सिद्ध-पीठ रज-रप्पा
हजारीबाग, बिहार

(विवरण)

त्रि-शक्ति चामुण्डा पूजन-यन्त्र

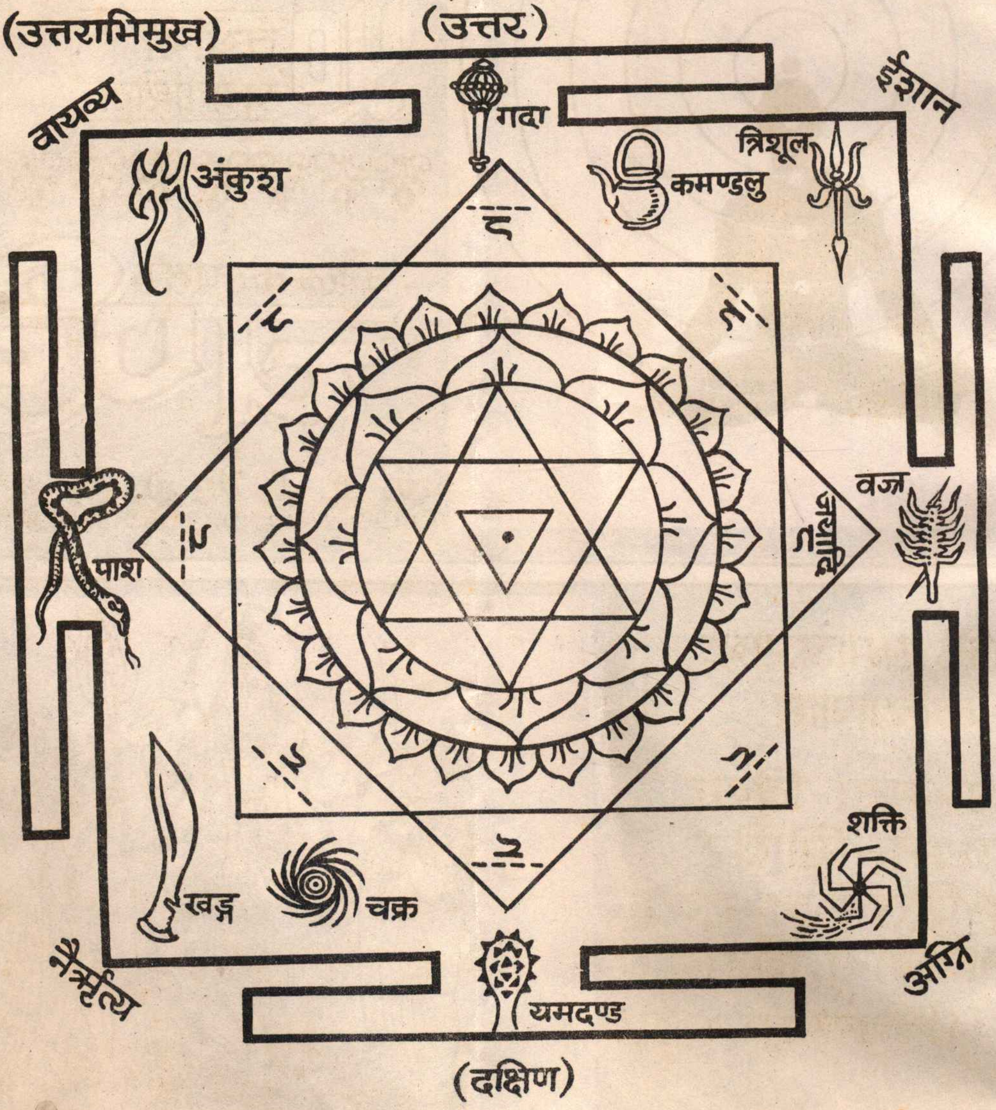

मानद सम्पादक
श्री रमादत्त शुक्ल

सम्पादक
श्री ऋतशील शर्मा

पता
चण्डी कार्यालय,
अलोपीबाग मार्ग,
प्रयाग—२११००६
(उ० प्र०)

दूर-भाष
६०६७८३

शुल्क भारत में
एक प्रति : रु० ५

वार्षिक शुल्क : रु० ५५
आजीवन शुल्क : रु० ५५०

शुल्क विदेश में
हवाई डाक/समुद्री डाक

वार्षिक : रु० ५००/३००
आजीवन : ५०००/३०००

शुल्क मनीआर्डर या ड्राफ्ट कौल-कल्पतरु चण्डी के नाम से चण्डी कार्यालय, इलाहाबाद के पते पर भेजें।

मुद्रक
परा वाणी प्रेस
अलोपीबाग मार्ग,
प्रयाग—२११००६

हिन्दू - धर्म के ज्ञान - मय क्रिया-पक्ष
की
राष्ट्र-भाषा' में शोध-पूर्ण प्रस्तुति

कौल-कल्पतरु चण्डी

वर्ष ५१] [अङ्क ९
मार्गशीर्ष, 'पार्थिव' सम्वत्, २०४९ वि० दिसम्बर, १९९२

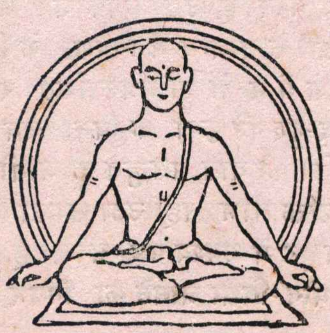

इस अंक में

○ एक महत्त्व-पूर्ण पत्र ... २५८
○ सच्चिदानन्द और माया ... २५९
○ सनातन धर्म और अन्य मत ... २६१
○ 'साधना-शिविर' की भूमिका ... २६३
○ कार्त्तिक मास के व्रत ... २६४
○ 'साधना-शिविर' (सिद्ध-पीठ रज-रप्पा) विवरण ... २६५-२८८

एक महत्त्व-पूर्ण पत्र

'गोपनीयता' के पक्षधर एक बन्धु ने कुछ महत्त्व-पूर्ण बातें लिखी हैं। यथा—

१ मेरे विचार से कोई भी 'मन्त्र' बिना 'गुरु'-मुख से प्राप्त हुए प्रभावी नहीं होता। जो व्यक्ति पुस्तकादि से पढ़कर 'मन्त्र'-जप करता है, उसका अनिष्ट होता है।

यह सत्य है कि गुरु-मुख से प्राप्त मन्त्र ही प्रभावी होता है, किन्तु 'गुरु' है कौन? मानव-शरीरधारी 'गुरु' वास्तव में 'आदि-गुरु' भगवान् 'शिव' का प्रतिनिधि मात्र होता है। वह प्रतिनिधित्व तभी कर सकता है, जब वह पाश-मुक्त होकर लोकोपकार की दृष्टि से 'गुरु' के कर्तव्यों का पालन करे। क्या ऐसे 'पूर्णाभिषिक्त गुरु' सबको सुलभ हैं?

२ आप स्वयं प्रकाशित कर रहे हैं कि यह 'मन्त्र' गुप्त है। गोपनीय मन्त्रों का प्रकाशन कर गुह्य मन्त्रों को पात्रापात्र तक सोधे पहुँचाने से किसका कितना कल्याण होगा, कृपया स्वयं जाँचें।

संस्कृत के ग्रन्थों और पाण्डु-लिपियों में सभी 'मन्त्र' लिपि-बद्ध हैं। यह साहित्य अब विदेशों में भी पहुँच ही नहीं चुका है, उसका प्रकाशन अंग्रेजी आदि विदेशी भाषाओं में भी हो गया है और **'गोपनीय मन्त्र-विद्या'** के सम्बन्ध में विदेशों के विश्व-विद्यालयों में **'शोध-कार्य'** भी हो रहा है। इससे स्पष्ट है कि अपने देश में मन्त्रों को अप्रकाशित रखने से उनकी 'गोपनीयता' बनी नहीं रह सकती। 'मन्त्र का रहस्य' सद्-गुरु की कृपा के बिना जब कोई जान नहीं सकता, तब मन्त्रों के प्रकाशन से 'गोपनीयता' भङ्ग होने की बात असङ्गत हो जाती है। पत्रिका या पुस्तक में प्रकाशित मन्त्रों से पात्र या अपात्र—कोई भी व्यक्ति लाभ नहीं उठा सकता। हाँ, केवल पुस्तक के आधार पर किसी 'मन्त्र' का प्रयोग करनेवाला सङ्कट में अवश्य पड़ सकता है, **किन्तु इसका दायित्व स्वयं उसी पर होगा क्योंकि 'गुरु'-मुख से ही 'प्रयोग'-विद्या जानने का नियम सर्वत्र लिखा है और प्रायः सभी लोग इस नियम को जानते भी हैं।**

३ कृपा करके गुह्य मन्त्रों की 'गुह्यता' को बने रहने दें, जिससे उनका प्रभाव कम न हो। तन्त्र-शास्त्रियों ने अपनी पुस्तकों में प्रायः मन्त्रों का विवरण देते हुए सीधे बीजाक्षरों को नहीं खोला है, अपितु प्रत्येक बीजाक्षर से सम्बन्धित विवरण देते हुए 'मन्त्र' का विस्तार किया है, जिससे पाठक उसकी गुह्यता को भङ्ग न कर सके। केवल 'सु - पात्र' ही जान सकें तथा जानने के बाद भी 'गुरु-मुख' से ही ग्रहण करके आगे बढ़ें।

'मन्त्रोद्धार' के अनुसार जो स्पष्ट मन्त्र बनता है, उसका प्रकाशन संस्कृत ग्रन्थों—पाण्डु-लिपियों में आज उपलब्ध है, जिसके आधार पर अंग्रेजी आदि भाषाओं में भी उनका प्रकाशन हो चुका है। ऐसी दशा में भारतीय तन्त्र-शास्त्रियों का अपनी पुस्तकों में बीजाक्षरों को न खोलना हास्यास्पद ही माना जायगा। जैसा कि स्पष्ट किया जा चुका है—**मन्त्रों की गोपनीयता का निवारण विज्ञ अनुभवी गुरुओं द्वारा ही सम्भव है।** पुस्तकों में उनके प्रकाशन से उनकी गुह्यता भङ्ग नहीं होती।

सच्चिदानन्द और माया

* पण्डित श्रीकान्तबिहारी मिश्र, पटना

सन्तों का कहना है कि जो हरि को अपने हृदय में धारण करता है, वह अपने व्यापार को सफलता-पूर्वक समाप्त करता है। भगवान् जब किसी के हृदय-सिंहासन पर आरूढ़ हो जाते हैं—हृदय में स्थायी रूप से रहने लगते हैं, तब सूक्ष्म-जीवात्मा स्थूल शरीर में रहते हुए नित्य, अनन्त एवं पूर्ण आनन्द का उपभोग करने लगता है। वह आनन्द निराकार है, जो जड़ और चेतन के रूप में दृश्य होता है।

दृश्य मनुष्यादि-रूप और अदृश्य मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार, जीवात्मा - शिवात्मा—सभी उस नित्य-पूर्ण आनन्द के रूप हैं, जो अनन्त है। अन्तर का सूक्ष्म जीवात्मा अपने स्थूल शरीर की सहायता से अनेक प्रकार का भोजन और भोग-पदार्थ जमा करता है और उसमें जो आनन्द प्राप्त होता है, उसका उपभोग करता है, परन्तु इन नाश-वान् वस्तुओं से जो आनन्द प्राप्त होता है, वह मिथ्या और क्षण-स्थायी है। यद्यपि यह स्थूल शरीर उस नित्य-पूर्ण आनन्द का गाढ़ा जमा हुआ रूप है, तथापि मिथ्या और नाश-वान् वस्तुओं पर निर्भर रहने के कारण इसका भी नाश हो जाता है।

प्रश्न उठता है कि यदि स्थूल शरीर और स्थूल वस्तु नाश - वान् हैं, तो उनके प्रतिकूल कोई अनाश-वान् अदृश्य शरीर और कोई अनाश-वान् अदृश्य वस्तु भी तो होगी ? सन्त - गण इसका उत्तर देते हैं कि ऐसे अविनाशी शरीर और अनाश-वान् वस्तुएँ हैं, जिनका उन सबने अनुभव प्राप्त किया है। सउ शरीर और अविनाशी वस्तु को प्राप्त करने के लिए ऋषियों ने सहस्रों वर्ष पहले अनेक उपाय बतलाए हैं। राम, कृष्ण, दुर्गा, काली, तारा आदि भगवान् के नामों का **'नाद'** हैं, जो इन नामों के उच्चारण से निकलता है। यही **'नाद'** जब पूर्ण - रूप में जमा हो जाता है, तब वह अदृश्य और अनाश - वान् देह या वस्तु प्राप्त होती है। उक्त नाम के नामी का रूप ही वह अदृश्य अनाश-वान् देह है और उनका पूजन-भजन-प्रार्थना आदि ही अदृश्य अनाश-वान् वस्तुएँ ।

उक्त प्रकार की देह और वस्तु नित्य आनन्द कही जाती हैं, परन्तु उनसे प्राप्त होनेवाले आनन्द की कोई सीमा भी तो होगी ? नहीं, यह आनन्द इतना अधिक है कि इसकी सीमा को कोई नहीं जानता। यह केवल अनन्त, असीम—कभी न कम होनेवाला आनन्द है। **'नाद'** को जमा करते-करते जब वह एक निश्चित रूप में जमा हो जाता है, तब जीवात्मा उस आनन्द का उपभोग करने लगता है और स्थूल शरीर छोड़ने पर सूक्ष्म अनाश-वान् शरीर प्राप्त कर उस अनन्त आनन्द का उपभोग करता रहता है।

यहाँ एक बात बतानी आवश्यक है कि **'नाम'** और **'बीज'** में बहुत अन्तर है। सहस्र बार **'नाम'**-उच्चारण से जो फल होता है, वह **'बीज'** के एक ही बार उच्चारण से प्राप्त होता है। परमहंस रामकृष्ण देव ने भी **'बीज'** ही की प्रशंसा की है। श्री माँ कहा करती थीं कि एक कोरे कपड़े को भीगने के लिए पानी में छोड़ दो। वह भीगते-भीगते दिन भर भी लगा सकता है—यही **'नाम'** - उच्चारण है और उस कपड़े को जल में देकर हाथ से मल दो, तो तुरन्त भीग जाएगा—यह **'बीज'**-उच्चारण है।

मूलतः प्रत्येक वस्तु उस अनन्त का ही एक रूप है, जो **'आनन्द'** है। उस 'आनन्द' को अनुभव करने के लिए एक चेतना चाहिए, जो उसका अनुभव—बोध करावे। वह चेतना—वह चित्त—वह उपभोग का बोध भी उसी अनन्त का एक रूप है। इसी बोध को जानना - समझना—चेतना अथवा **'ज्ञान'** कहा जाता है। यह चेतना या **'चित्'** और पूर्ण आनन्द एक ही पदार्थ हैं। जब आनन्द को अनुभव करने का प्रश्न आता है, तब वह अनन्त 'ज्ञान' या **'चित्'** का रूप धारण करता है अर्थात् बोध के समय **'चित्'** स्वयं आनन्द का रूप धारण करता है।

इसलिए 'चित्' का अर्थ हुआ 'आनन्द' और 'आनन्द' का अर्थ हुआ 'चित्'। ये भिन्न नहीं हैं—एक ही हैं और चूंकि वे सत्ता में हैं, इसलिए **'सत्'** हैं। इस प्रकार 'सत्' का अर्थ भी वही हुआ, जो 'चित्' और 'आनन्द' का है। इसलिए जो 'सत्' है, वही 'चित्' है और जो 'चित्' है, वही 'आनन्द' है। यद्यपि स्पष्ट रूप में ये तीन प्रतीत होते हैं—सत्ता, चेतना और आनन्द अर्थात् **'सत्-चित्-आनन्द'**, किन्तु हैं वे एक ही वस्तु। एक ही वस्तु के तीन नाम हैं। एक के प्रगट होने से तीनों अपने ही आप प्रगट हो जाते हैं। जैसे भी अनन्त को देखा जाय, सत्ता में आने पर ये तीन उपाधियाँ उससे युक्त हो जाती हैं।

जैसे कोई व्यक्ति भिन्न-भिन्न तीन कार्य करता है और उन कार्यों के अनुसार वह तीन नाम पाता है। ये तीन नाम या उपाधियाँ एक ही व्यक्ति को मिलती हैं, परन्तु जब वह कोई कार्य नहीं करता, तब वह केवल एक मनुष्य मात्र रह जाता है। इसी प्रकार जब वह अनन्त किसी भी गुण के साथ प्रकट नहीं होता, तब ये उपाधियाँ—**'सत्-चित्-आनन्द'** में से कोई भी उससे अलग नहीं रहती और न एकत्र ही। तब वह केवल **'है'** रहता है अर्थात् बिना किसी विशेषण के उच्चारण किए हुए कहा जा सकता है कि **'वह है।'** वे सत्ताएँ हैं—इसका अर्थ है कि वे **'सत्'** हैं।

सत्ता में आने पर ही कोई अपने को प्रकाश कर सकता है, परन्तु जैसे ही 'सत्' माना जाएगा, वैसे ही **'चित्'** और **'आनन्द'** भी प्रगट हो जाएँगे। इस प्रकार **'सत्-चित्-आनन्द'** वास्तव में उस अनन्त की सत्ता को प्रकाश करता है। जब आरम्भ में **'सत्-चित्-आनन्द'** रूपान्तर करना आरम्भ करता है, तब वह पर-ब्रह्म कहा जाता है और जब उस पर-ब्रह्म में **'सत्-चित्-आनन्द'** का विशेषण नहीं रहता, तब उसकी अवस्था **'केवल'** की कही जाती है क्योंकि जब वह 'केवल' अवस्था में है, तब उसका उपयोग क्या हो सकता है?

पर-ब्रह्म की **'केवल'** या **'है'** अवस्था को व्यक्त करने के लिए उसे 'सत्' कहा जाता है, परन्तु वास्तव में 'सत्'-शब्द से जो समझा जाता है, वह सत्ता में नहीं है, इसलिए वे **'नहीं हैं'**—यद्यपि सत्य ही **'वे हैं'**। इस प्रकार जब अनन्त कोई गुण दिखलाते हैं, तो वे **'सत्-चित्-आनन्द'** कहे जाते हैं और जब उनमें कोई विशेष नहीं देखा जाता, तब वे—**'केवल'**—कहे जाते हैं। चूँकि सत्ता - रहित का स्पष्ट गुण 'केवल' उनमें है, इसलिए वे—'नहीं हैं'—कहे जाते हैं। यही **'सच्चिदानन्द'** की व्याख्या हुई, जो हमने सन्तों के श्री मुख से सुना है।

सनातन धर्म रूपी 'सूर्य'

और

'किरण' रूपी अन्य मत

(हिन्दू, मुस्लिम, यहूदी, पारसी एवं ईसाई धर्म-मतों की विवेचना)

* पं० गोविन्द शास्त्री दुगवेकर

'सनातन-धर्म' और अन्य मतों के आचारों में भिन्नता पाई जाती है। आचारों का सम्बन्ध स्थूल शरीर के साथ है। स्थूल शरीर के उन्नति-कारक धर्मानुकूल व्यापारों को आचार कहते हैं। स्थूल शरीर सूक्ष्म शरीर का विस्तार मात्र है। अतः सूक्ष्म शरीर की उन्नति के लिए स्थूल शरीर को आचार-पालन के द्वारा ही पवित्र रक्खा जा सकता है और वह आवश्यक भी है। प्राचीन महर्षियों ने योग-शक्ति के द्वारा स्थूल, सूक्ष्म, आध्यात्मिक और देव-जगत् का पता लगाकर तथा उनके पारस्परिक सम्बन्ध का अनुभव कर तीनों शरीरों के द्वारा आत्मोन्नति में सहायता प्राप्त करने के लिए आचारों का विधान किया है। अभी वहाँ तक अन्य धर्म-मतों की पहुँच नहीं हो पाई है, परन्तु लक्ष्य सबका एक है।

उदाहरणार्थ भक्ति के लक्षणों को ही लीजिए। मुसलमान महात्माओं ने मवाफिकत, मवानिसत आदि जो **'भक्ति'** की ११ दशाएँ बताई हैं, उनकी आर्य-शास्त्रोक्त **'वैधी'** और **'रागात्मिका'** भक्ति की दशाओं के साथ बहुत कुछ एकता है। इसी प्रकार **'सप्त - ज्ञान - भूमियों'** के साथ उनकी आलम्-ए-नासूत, आलम्-ए-मालकूट आदि पाँच अवस्थाओं की अनेकांश में तुलना हो सकती है। **'जीव'** और **'ब्रह्म'** की एकता का भी 'कुरान' की कविताओं में कहीं-कहीं आभास मिलता है। यथा—**'मैं तुम्हारे साथ हूँ, पर तुम मुझे नहीं देखते।' 'मैं जीवों में गुप्त तत्त्व हूँ और वैसे ही जीव मुझमें हैं।' 'मैं सत्य स्वरूप हूँ।' 'मैं वही प्यारा हूँ।'** इसी **'अद्वैत-वाद'** के प्रचार के कारण हुसेन को लोगों ने मार डाला था क्योंकि वे इन उच्च चिन्ताओं को समझ नहीं सकते थे।

यहूदियों की बहुत-सी बातों का हिन्दु-धर्म के साथ मेल है। इसके प्रवर्तक आत्मा की जन्मान्तरीय गति को मानते थे। वे यह भी मानते हैं कि उनके आदि दो गुरु आदि-पुरुष **'आदम'** से ही प्रकट हुए थे। हमारे **'कलावतार के विज्ञान'** का इसमें आभास मिलता है। **'त्रि-मूर्ति'** और **'गुरु - तत्त्व'** भी उन्हें मान्य है। उपासना के साधनों में **'स्मरण, कीर्तन'** आदि का भी उन्होंने समावेश किया है।

पारसी धर्म-मत में भी हिन्दु-धर्म की बहुत-सी बातें मिलती-जुलती हैं। वैदिक - धर्म के साथ उनका बहुत-कुछ सामञ्जस्य है। उनकी हिटाइट शिला-लिपियों से पता चलता है कि जैसे हमारे **'वरुण, मित्र, इन्द्र'** आदि देवता हैं, वैसे उनके भी हैं। हमारे समान वे भी अग्नि-देवता, जल - देवता आदि की पूजा करते और विशेष अवसरों पर **'सोम-रस'** भी अर्पण करते हैं। हम सत्त्व-गुण की अधिष्ठात्री उच्च कोटि की **'शक्ति'** को **'देवता'** और तमो-गुण की अधिष्ठात्री अधम कोटि की **'शक्ति'** को **'असुर'** कहते हैं। वे असुरों को देवता और देवताओं को असुर कहते हैं। इसमें नाम मात्र का अन्तर है, बात एक ही है। उनके यहाँ भी संसार को **'देवासुर-संग्राम'** का नित्य-निकेतन और मनुष्य के अन्तः-करण को उस

संग्राम का एक प्रधान स्थान माना है। पुण्य कार्यों से देवताओं की और पाप कार्यों से असुरों की शक्ति के बढ़ने पर उनका भी विश्वास है। आर्यों की **'सप्त-ज्ञान-भूमियों'** की तरह पारसी धर्म - मत में भी **'आशेम, क्षत्रेण'** आदि आध्यात्मिक उन्नति की छः सीढ़ियाँ मानी गई हैं। पारसी धर्म आर्य-धर्मोद्‌भूत ही प्रतीत होता है।

इसी प्रकार ईसाई धर्म में हिन्दू-धर्म के साथ एकता का आभास मिलता है। 'बाइबिल' में लिखा है कि **'सृष्टि के पहले सर्वत्र अन्धकार था, परन्तु परमात्मा के इच्छा करने पर सर्वत्र प्रकाश हो गया।'** मनु भगवान् का भी यही मत है। सेण्ट जान का उपदेश है कि **'सृष्टि के प्रारम्भ - काल में शब्द था, वह शब्द ईश्वर के साथ था और ईश्वर - रूप था।'** उपनिषदों ने भी यही सृष्टि-क्रम माना है। ईसाई मत में जो पिता, पुत्र और पवित्रात्मा का वर्णन है, वह **'अवतार-वाद'** से मिलता-जुलता है।

ईसाई मत में **'अद्वैत-वाद'** की भी झलक देख पड़ती है। उनका धर्म-ग्रन्थ कहता है : **'मैं अपने परम पिता के भीतर हूँ और तुम सब मेरे भीतर हो। तुम मुझमें हो और मैं तुझमें हूँ। मैं और परम पिता एक ही हैं।'** जान एपेस ने कहा है—**'स्वर्ग मेरा है, पृथ्वी मेरी है, पुण्यात्मा और पापी भी मेरे हैं, ईश्वर मेरा है, तुम किसे ढूँढ़ रहे हो ? सब तो तुम्हारे ही हैं।'** आर्य मुमुक्षु भी अपने में ब्रह्म - सत्ता का अनुभव कर उसी में समस्त संसार को देखता है। **'प्रेम का यही स्वरूप है कि जिससे प्रेम किया जाय, उसके साथ अभिन्न भाव की सिद्धि हो। परमात्मा के साथ एकता प्राप्त करने के अतिरिक्त जीवात्मा की उन्नति का और कोई उपाय या लक्ष्य हो नहीं सकता।'** बाइबिल के इस वचन के साथ, हमारे भक्ति-शास्त्र के बचन—**'वह मेरा है, मैं उसका हूँ, वह और मैं एक ही हूँ।'** का बहुत कुछ मेल है।

सारांश में, **'सनातन-धर्म'** रूपी सूर्य की अनन्त किरणों में से एक या अधिक किरण - कणों की सहायता से प्रकाशित होकर, पृथ्वी के सम्पूर्ण 'धर्म'-मत, अपनी-अपनी श्रेणी के मनुष्यों में उन्नति का मार्ग दिखा रहे हैं और वे सब मत पूर्वोक्त **'सनातन-धर्म'** के ७२ अङ्गों में आ जाते हैं। यही कारण है कि हमारा **'सनातन-धर्म'** संसार के सब मतों को अपनी सन्तानें समझकर आदर करता है। इसी से वह **'विश्व-व्यापक धर्म'** है।

'चण्डी' की आजीवन सदस्यता

'चण्डी' मासिक पत्रिका का प्रकाशन पछले ५० वर्षों से प्रति-मास अधिक-से-अधिक उपयोगी रूप में हो रहा है। **'प्रकाशन - कार्य' की सुविधा** की दृष्टि से, **'चण्डी'** मासिक पत्रिका की **'आजीवन सदस्यता'** की योजना बनाई गई है। सम्पन्न पाठक बन्धुओं से निवेदन है कि—

पाँच सौ पचास रु० (५५०-०० रु०) **बैङ्क ड्राफ्ट मनीआर्डर/पोस्टल आर्डर द्वारा भेजकर** **'चण्डी' के आजीवन सदस्य** बनने की कृपा करें।

बैङ्क ड्राफ्ट **'कौल-कल्पतरु' चण्डी, इलाहाबाद** के नाम तथा पोस्टल आर्डर—**ऋतशील शर्मा, चण्डी कार्यालय, इलाहाबाद** के नाम बनवाने की कृपा करें।

'चण्डी' के **'आजीवन-सदस्य'** को **'चण्डी'** जीवन-पर्यन्त, जब तक **'चण्डी'** प्रकाशित होती रहेगी, प्रति-वर्ष भेजी जाएगी।

विशेष—'चण्डी' की विशेषाङ्क-योजना के अन्तर्गत वर्ष में चार-पाँच विशेषाङ्क पुस्तक-रूप में प्रकाशित होते हैं। वे विशेषाङ्क **'आजीवन सदस्य'** को रियायती मूल्य की वी० पी० द्वारा भेजे जाएँगे।

सम्पादकीय—

'साधना-शिविर' की भूमिका

जगज्जननी की असीम दया से आज 'कौल-कल्पतरु' शुक्ल जी जैसे निष्ठावान् धर्माचार्यों का चिर-स्वप्न चरितार्थ होता दृष्टि-गत हो रहा है। अध्यात्म के क्षेत्र में व्याप्त भ्रान्ति, अज्ञानता के गह्वर से निकलकर, निष्ठावान् धर्मावलम्बी तीन दिनों के **साधना-शिविर** का सूत्रपात कर रहे हैं। इसका श्रेय है **'कुमुद प्रीता ट्रस्ट', रज-रप्पा, हजारीबाग (बिहार)** के न्यासी महानुभावों को एवं उनके सहयोगियों को। निश्चय ही, सम्पूर्ण भारतीय आध्यात्मिक जगत् आपके इस अभूत-पूर्व आयोजन के लिए चिर कृतज्ञ रहेगा। वास्तव में, **हिन्दू-धर्म की व्यावहारिक शिक्षा** जन-साधारण को देने के उद्देश्य से **'त्रि-दिवसीय साधना-शिविर'** का पहले-पहल आयोजन करना कितनी महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना है, इसका मूल्याङ्कन आनेवाले दशकों में ही हो सकेगा।

आज आवश्यकता इस बात की है कि 'हिन्दु-धर्म' के 'साधना-पक्ष' के सरल-तम कल्याणकारी स्वरूप को मानव-समाज के समक्ष प्रस्तुत किया जाए, जिससे अधिक-से-अधिक संख्या में आस्थावान् बन्धु 'साधना-पक्ष' को अपना सकें और **व्यक्ति, समाज तथा राष्ट्र का कल्याण** प्रशस्त हो सके।

भ्रान्ति, अज्ञानता के दुष्प्रभाव से आज 'जगद्-गुरु' कहलानेवाले 'भारत' के ही लोग, हिन्दू-धर्म के 'साधना-पक्ष' के आधार-भूत सिद्धान्तों, क्रियाओं को सर्वथा-भूल चुके हैं। उदाहरण के लिए, आज आस्थावान् हिन्दू-समाज में **'प्रातः-कृत्य'** करना तो दूर की बात है, शय्या से उतरते समय **'पृथ्वी माता से क्षमा-प्रार्थना'** का क्या आशय, सन्दर्भ अथवा भाव है, इसे बिरले लोग ही जानते हैं। छोटी-से-छोटी और बड़ी-से-बड़ी 'पूजा' के प्रारम्भ में ही जिन मन्त्रों का प्रयोग किया जाता है, उसके सम्बन्ध में लोगों में कितनी अज्ञानता है, इसे जानकर किसे क्षोभ न होगा!

ॐ गङ्गे च यमुने चैव, गोदावरि सरस्वति!
नर्मदे सिन्धु कावेरि, जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ॥

किस जल में प्रवेश करने के लिए इस मन्त्र द्वारा गङ्गा आदि तीर्थ-शक्तियों से प्रार्थना की जाती है? ये सात तीर्थ-शक्तियाँ हैं कहाँ? इनका आवाहन किस मुद्रा में किया जाता है? इन प्रश्नों को पूछने पर आजकल के तथा-कथित शिक्षित जन चक्कर में पड़ जाते हैं! यही दशा उक्त 'प्राथमिक मन्त्र' के ठीक बाद आनेवाले मन्त्र की भी है—

ॐ अपवित्रः पवित्रो वा, सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं, स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः ॥

इस मन्त्र का क्या आशय है? इसका कैसा प्रभाव पड़ना चाहिए? कितने लोग बता सकेंगे?

नितान्त सामान्य मन्त्रों के सम्बन्ध में सामान्य जन ही नहीं, 'विज्ञ जन' भी अन्धकार में हैं। यही दशा **'प्राथमिक सिद्धान्तों'** की है। उदाहरण के लिए **'आचारो प्रथमो धर्मः', 'पाश-बद्धः पशुः प्रोक्तः', 'देवो भूत्वा, देवं यजेत्', 'देहो देवालयः प्रोक्तः', 'कामाख्या तु गृहे-गृहे', 'यावन्न दृष्टिः चलते', 'जिह्वा दग्धा परान्नेन', 'भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव'** आदि सूत्रात्मक निर्देशों के प्रति किसी का ध्यान ही नहीं है!

'मन्त्र' की महिमा से अभिभूत होकर प्रत्येक जिज्ञासु उसकी **'सिद्धि'** प्राप्त करने के लिए आतुर हो उठता है और पुस्तक में पढ़कर या किसी के बताने पर उसका **'जप'** करने में जुट जाता है, किन्तु **'मन्त्र'** के प्रमुख अङ्गों के नाम तक कितनों को याद हो पाते हैं, उनका आशय समझना तो दूर की बात है ! **'विनियोग'**, **'ऋष्यादि-न्यास'**, **'षडङ्ग-न्यास'**, **'ध्यान'**, **'मानस-पूजन'**, **'जप'**, **'जप - समर्पण'** जैसे आधार-भूत अङ्गों के महत्त्व को कितने लोग हृदयङ्गम कर पाते हैं ?

और-तो-और, जप के लिए सर्व-श्रेष्ठ **'माला'** के नाम तक को प्रायः सभी भूल चुके हैं ! उस **'माला'** में न रुपए खर्च होते हैं, न उसमें नकली-असली का भय है और न उसके चोरी जाने या नष्ट होने की झंझट है। कुछ ही अभ्यास से वह आत्म-सात् हो जाती है। फिर भी आज के **'गुरु'** लोग उसकी चर्चा तक नहीं करते, किसी से उसका अभ्यास कराने की बात अलग रही !

अतः आस्थावान् समाज एवं पूज्य गुरु-जनों से विनम्र प्रार्थना है कि इस **'अल्पज्ञ'** लेखक ने जो कुछ निवेदन किया है, उस पर गम्भीरता से विचार कर एक ऐसी योजना का सूत्रपात करने की कृपा करें, जिससे देश के समस्त प्रमुख केन्द्रों में इसी प्रकार के **'साधना-शिविर'** आयोजित हों, जिससे **'साधना-पक्ष'** के जिज्ञासुओं को आवश्यक मार्ग-दर्शन पाने की सुविधा सहज ही सुलभ हो सके।

कार्त्तिक मास के व्रत

[नारदीय महा-पुराण से सङ्कलित]

१—**कार्त्तिक शुक्ला प्रतिपदा** को 'नव-रात्र' में बताए अनुसार नियम पालन करे।

२—**कार्त्तिक शुक्ला तृतीया** को **'विष्णु गौरी-व्रत'** करे। भाँति-भाँति के उपचारों से जगद्-वन्द्या श्रीलक्ष्मी जी की पूजा करके मङ्गल-द्रव्यों से किसी सुवासिनी स्त्री का पूजन करने के पश्चात् उसे भोजन कराए और प्रणाम करके उसे विदा करे।

३—**कार्त्तिक शुक्ला पञ्चमी** को सब पापों का नाश करने के लिए, श्रद्धा - पूर्वक परम उत्तम **'जया-व्रत'** करना चाहिए। एकाग्र-चित्त होकर विधि-पूर्वक षोडशोपचार से **जया देवी** की पूजा करके, पवित्र तथा वस्त्राभूषणों से अलंकृत हो, एक ब्राह्मण को भोजन कराए और दक्षिणा देकर उसे विदा करे। तदनन्तर स्वयं मौन होकर, भोजन करे। जो भक्ति-पूर्वक **'जया'** के दिन स्नान करता है, उसके सब पाप नष्ट हो जाते हैं। 'अश्व-मेध यज्ञ' के अन्त में स्नान करने से जो फल बताया गया है, वही **'जया'** के दिन भी स्नान करने से प्राप्त होता है।

४—**कार्त्तिक शुक्ला षष्ठी** को शङ्कर-पुत्र श्री षडानन कार्तिकेय ने देव - सेना से विवाह किया था। अतः इस तिथि को सम्पूर्ण मनोहर उपचारों द्वारा **भगवती देव-सेना** की, **पति षडानन कार्त्तिकेय** के साथ भली-भाँति पूजा करके, मनुष्य अपने मन के अनुकूल अनुपम सिद्धि प्राप्त करता है। 'देव-सेना' ही **'षष्ठी देवी'** नाम से प्रसिद्ध हैं, जो सन्तान-दायिनी हैं।

५—**कार्त्तिकी अमावास्या** को देव-मन्दिर, घर, नदी, बाग, पोखरा, चैत्य वृक्ष, गौ - शाला तथा बाजार में 'दीप-दान' करके श्रीलक्ष्मी जी की पूजा करे।

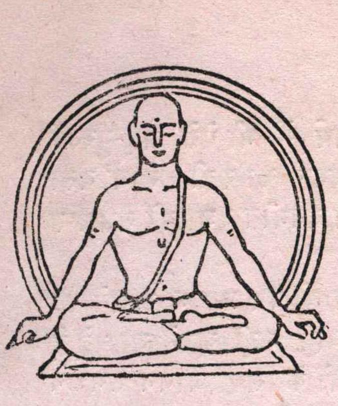

व्यक्ति, समाज, राष्ट्र

कल्याणार्थ

दश-महा-विद्या

साधना-शिविर

सिद्ध-पीठ 'रज-रप्पा'

विवरण

[कार्त्तिक शुक्ला ७, रविवार तदनुसार १, नवम्बर, १९९२]

पं० विश्वनाथ पाण्डेय द्वारा 'श्रीगुरु'-स्तुति

पं० रमादत्त शुक्ल द्वारा 'साधना-शिविर' की भूमिका-विवेचन (पृष्ठ २६३-२६४ पर प्रकाशित)

श्री ऋतशील शर्मा द्वारा **'साधना-शिविर'** के उद्देश्यों का संक्षेप में स्पष्टीकरण

आदरणीय सभापति जी, देवियों एवं बन्धुओं,

प्रथम **'साधना-शिविर'** (सिद्ध-पीठ रज-रप्पा) की कार्यवाही प्रारम्भ करने से पूर्व मैं इसके उद्देश्यों के प्रति संक्षेप में कुछ **'निवेदन'** करना आवश्यक समझता हूँ।......इस 'साधना-शिविर' का एक-मात्र उद्देश्य है–'परमात्म'-तत्त्व से आस्था-वान् समाज का सार्थक **'सम्बन्ध'** स्थापित कराने की चेष्टा करना।

'परमात्म तत्त्व' ही भौतिक 'सुख' एवं आध्यात्मिक 'आनन्द' का वास्तविक केन्द्र है। इसका ज्ञान जब तक नहीं होता, सभी वस्तुएँ ऊपर से भले सुख-दायी प्रतीत हों, अन्ततः दुःख-दायी ही सिद्ध होती हैं।

आज, मानव-समाज के पास वस्तुओं का भण्डार है, किन्तु 'परमात्म-तत्त्व' की उपलब्धि न होने के कारण, वह अत्यन्त दयनीय अवस्था को प्राप्त है।

'परमात्म-तत्त्व' से सम्बन्ध स्थापित करने का अर्थ है—'आत्मा' में 'मन' को लगाना। 'मन' को ऐसा बनाना है, जिससे वह 'आत्मा' के साथ एकाकार हो जाए। 'मन' को 'आत्मा' के चिन्तन में लगाने से 'परमात्मा' के गुणों—**'सत्-चित्-आनन्द'** की उपलब्धि हमें भी होगी और हम **'सच्चिदानन्द पर-ब्रह्म'** की अनुभूति पा सकेंगे, इसमें सन्देह नहीं। यही आज मानव-समाज की वास्तविक 'भूख' भी है, जिसकी तृप्ति न हो पाने से वह 'तड़प' रहा है।

अपने ढङ्ग का यह प्रथम **'साधना-शिविर'**, मानव-समाज की उसी भूख को मिटाने का एक छोटा-सा प्रयास है।

'परमात्म-तत्त्व' से सम्बन्ध स्थापित करने के लिए सभी लोगों के लिए एक ही **'मार्ग'** नहीं हो सकता। 'मन' को 'आत्मा' में लगाने के बहुत से 'मार्ग' हैं। इसीलिए 'परमात्म'-तत्त्व से सम्बन्ध स्थापित करने का सच्चा 'मार्ग' पाने के लिए, हमारे यहाँ **'गुरु'** का अत्यधिक महत्त्व बताया गया है। 'गुरु' को **'ब्रह्मा-विष्णु-महेश'** ही नहीं, साक्षात् **'पर-ब्रह्म'** कहा गया है।

परिस्थितियों-वश, आज हमारे पवित्र देश **'जगद्-गुरु'** भारत-वर्ष में भी ऐसे सद्-गुरुओं का अभाव हो गया है, जो 'परमात्म'-तत्त्व से सम्बन्ध स्थापित कराने का सही **'मार्ग'** बता सकें। 'परमात्म'-तत्त्व की उपलब्धि हेतु सद्-गुरुओं की प्राप्ति की इस दयनीय दशा की समाप्ति करना भी इस प्रथम 'साधना-शिविर' के आयोजन का लक्ष्य है।

'साधना-शिविर' के इस पहले आयोजन में अत्यन्त प्रारम्भिक बातों पर प्रकाश डालने का प्रयास हो रहा है। 'साधना'-मार्ग की गम्भीर बातों की चर्चा हम यहाँ नहीं करने जा रहे हैं क्योंकि गम्भीर बातों की जानकारी के लिए अथवा जिज्ञासु बन्धुओं के लिए जानने-समझने एवं समझाने के अन्य उपाय हैं, किन्तु साधारण बातों के लिए, छोटी-छोटी आवश्यक बातों के लिए, नित्य के काम की बातों के लिए कोई मार्ग-दर्शक नहीं है। अतएव, उपस्थित देवियों एवं बन्धुओं से विनम्र निवेदन है कि वे कृपया हमारे उक्त उद्देश्यों को ध्यान में रखकर हमारी कार्यवाही की समीक्षा करेंगे, तथा अपने सुझाव देने की कृपा करेंगे।

'साधना - शिविर' (सिद्ध-पीठ रज-रप्पा) का प्रथम प्रपत्र आपके समक्ष **'कुल-रत्न'** **श्री विजय वत्स जी (पटना)** प्रस्तुत कर रहे हैं। यह प्रपत्र, 'साधना'-सम्बन्धी कुछ आवश्यक बातों, यथा—आसन, पूजा के पात्र, जप-माला आदि से सम्बन्धित है।

'साधना'-सम्बन्धी कुछ आवश्यक ज्ञातव्य

१ आसन—साधना 'आसन' पर बैठकर की जाती है। 'आसन' से तात्पर्य है—कुशासन, मृग-चर्म आदि के आसन, ऊन, रेशम या सूत के बने आसन से। प्रत्येक साधक को अपना 'आसन' सुरक्षित रखना चाहिए। उसे किसी अन्य के प्रयोग में नहीं देना चाहिए। 'आसन' को शुद्ध स्थान पर, पवित्र दशा में रखना चाहिए।

'आसन' का दूसरा अर्थ यौगिक आसन है, जिसके अनुसार पद्मासन, वीरासन, सुखासन आदि में, शरीर को पैरों की किस मुद्रा में स्थिर रखना चाहिए, यह निश्चित करना पड़ता है। दोनों ही प्रकार के 'आसनों' का ज्ञान 'साधना' करने के पूर्व साधक को प्राप्त कर लेना चाहिए।

२ पूजा के पात्र—आसन पर बैठने के बाद साधक को जल द्वारा अपना, आसन का और पूजा-गृह आदि का शोधन करना होता है। अतः एक पात्र शुद्ध जल के लिए होना चाहिए, साथ ही उसमें से जल निकालने हेतु एक चम्मच या आचमनी भी होनो आवश्यक है। इस जल-पात्र को **'सामान्यार्घ्य-पात्र'** के रूप में साधक लोग अपने सम्मुख दाएँ भाग में स्थापित करते हैं, जिससे देवता को पाद्य, अर्घ्य, आचमन आदि के लिए जल अर्पित किया जाता है। देवता को अर्पित जल छोड़ने के लिए एक तश्तरी या कटोरी जैसा अन्य पात्र भी रखना होता है। इन तीन पात्रों के सिवा **'गन्धाक्षत'** एवं

नैवेद्य' को रखने के लिए उनके अनुरूप दो अलग पात्रों की आवश्यकता पड़ती है । ये पाँचों पात्र **'पञ्च-पात्र'** कहलाते हैं ।

ये पात्र यदि पहले से स्वच्छ रूप में पूजा-स्थान में रखे रहते हैं, तो साधक अपनी साधना सरलता से कर सकता है । पात्र लोहे के न होकर, अन्य धातु के होने चाहिए ।

३ पञ्चोपचार-सामग्री—(क) गन्धाक्षत : 'गन्ध' से तात्पर्य है चन्दन से । देवी की पूजा में लाल चन्दन और शिव के पूजन में श्वेत चन्दन प्रशस्त है । अतः सम्भव हो, तो दोनों चन्दन घिस कर पहले से अलग-अलग किसी पात्र में रख लें । **'अक्षत'** से तात्पर्य है समूचे चावलों से : इन चावलों को धोकर उसी पात्र में अलग रख लें ।

सुविधा के लिए ऐसा भी कर सकते हैं कि **'चन्दन'** और **'अक्षत'** को आपस में मिलाकर ही पात्र में रख लें, किन्तु जहाँ केवल **'गन्ध'** ही अर्पित करना है, वहाँ चन्दन की आवश्यकता पड़ेगी, अतः मिश्रित गन्धाक्षत से अलग भी चन्दन का होना आवश्यक है ।

(ख) पुष्प : पुष्प' या फूल का पूजन में अपना विशेष महत्त्व है : देवी-उपासना में लाल, पीले आदि फूलों को प्रधानता होती है । उन्हीं की माला भी देवता को अर्पित करनी होती है । अतः प्रति-दिन पूजा के लिए फूल उपलब्ध रहें, इसके प्रति ध्यान रखना आवश्यक है : फूल न मिल सकें, तो उनके स्थान में **'पुष्प - स्थाने अक्षतान् समर्पयामि'** कहकर देवता को **'अक्षत'** अर्पित करें और फूल न दे सकने की अपनी त्रुटि के लिए मन-ही-मन क्षमा माँगें ।

(ग) धूप : गुग्गुल आदि सुगन्धित द्रव्य अग्नि में डालकर देवता को सुगन्ध से प्रसन्न किया जाता है । इसके लिए अष्ट-गन्ध या धूप - द्रव्य पहले से धूप-पात्र में रख लेना चाहिए और पूजा-काल में अग्नि उपलब्ध रहे, इसकी व्यवस्था होनी चाहिए । यदि यह सम्भव न हो, तो शुद्ध अगर-बत्ती का उपयोग सरलता से किया जा सकता है ।

(घ) दीप : देवता को आरती करने के लिए शुद्ध घृत या शुद्ध तैल में भीगी हुई रुई की बत्तियाँ पहले से पूजा-गृह में तैयार रहनी चाहिए । आरती के समय दीप - पात्र में बत्ती को रखकर और जलाकर दीप दिखाने की क्रिया की जाती है । इस कार्य के लिए एक दियासलाई भी पूजा-गृह में सदा विद्यमान रहनी चाहिए ।

(ङ) नैवेद्य : देवता को अर्पित करने के लिए मिष्ठान्न और फल की व्यवस्था रखनी चाहिए । अधिक न हो सके, तो बताशे और मेवा आदि पूजा-गृह में रखे रहें ।

४ जप-माला—अदीक्षित व्यक्तियों को तो मन्त्र जपने का अधिकार नहीं है, अतः उन्हें **'माला'** की आवश्यकता नहीं है, किन्तु जो 'उपदेश'-रूप दीक्षा से सम्पन्न हैं, वे मन्त्र का **'जप'** कर सकते हैं। उनके लिए **'माला'** आवश्यक है।

'जप' साधना का प्रधान अङ्ग है। यह उक्ति प्रसिद्ध ही है कि——

जपात् सिद्धिः, जपात् सिद्धिः, जपात् सिद्धिः, न संशयः।

अर्थात् सतत **'जप'** से ही सिद्धि मिलती है, इसमें सन्देह नहीं। पुरश्चरण के द्वारा **'मन्त्र'** प्राण-वन्त या जाग्रत् होता है और पुरश्चरण में मन्त्र के **'जप'** को ही प्रमुखता दी जाती है। प्रत्येक मन्त्र का **'जप'** एक निश्चित संख्या में करना पड़ता है। उसी के लिए साधक को 'माला' का सहारा लेना पड़ता है। **'वर्ण-माला'** या **'मातृका-माला'** को श्रेष्ठ बताया गया है क्योंकि—

(क) **'वर्ण-माला'** में किसी बाह्य वस्तु का सहारा नहीं लिया जाता, जिससे जप में साधक की पूर्ण एकाग्रता स्वतः हो जाती है।

(ख) संस्कृत की देव-लिपि का प्रत्येक **'वर्ण'** देव-स्वरूप है। उसे **'मातृका'** भी कहते हैं क्योंकि **'वर्ण'** से ही सभी मन्त्रादि उत्पन्न होते हैं। ऐसे वर्णों से बनी **'माला'** मन्त्र-मयी होती है, जिसमें अभीष्ट **'मन्त्र'** का जप करने से उस **'मन्त्र'** के सभी दोष दूर होकर साधक को सिद्धि निश्चित रूप से शीघ्र ही प्राप्त होती है।

'वर्ण-माला' का गठन **'अं आं'** से लेकर **'हं ळं'** तक के ५० वर्णों से होता है। इन्हीं वर्णों को विलोम-क्रम से अर्थात् **'ळं हं'** से **'आं अं'** तक संयोजित करने से १०० वर्ण हो जाते हैं। फिर स्वर-व्यञ्जनादि वर्गों के आदि के ८ वर्णों—**'अं कं चं टं तं पं यं शं'**—को मिलाने से पूरी १०८ वर्णों की माला प्रस्तुत हो जाती है। इस माला का सुमेरु **'क्षं'** है : एक सप्ताह के अभ्यास द्वारा साधक इस **वर्ण-माला** पर अपने अभीष्ट मन्त्र का 'जप' करने में सहज ही समर्थ हो जाता है। श्रीगुरु - मुख से सुनकर इसे प्रत्येक साधक को अवश्य सीखना चाहिए।

५ 'जप' की विधियाँ—'माला' द्वारा 'जप' करने के सम्बन्ध में कहा है कि 'माला' सदा दक्षिण हाथ से फेरनी चाहिए। हाथ को हृदय से कुछ ऊपर रख, 'गोमुखी' में या किसी अंगौछे या वस्त्र से ढँककर उसे फेरना चाहिए। माला फेरते समय कनिष्ठिका और तर्जनी अँगुली काम में नहीं लानी चाहिए।

माला १०८ मणिकाओं की होनी चाहिए। 'माला' जहाँ तक हो, 'रुद्राक्ष' की होनी चाहिए। अन्यथा तुलसी, हल्दी या अन्य माला भी काम में लाई जा सकती है। जब एक 'माला' पूरी हो जाए, तब **'सुमेरु'** का उल्लङ्घन किए बिना ही उसको पलट कर पुनः फेरना आरम्भ कर देना चाहिए। 'जप' करने में शीघ्रता नहीं करनी चाहिए। 'जप' एकाग्र-चित्त होकर पूर्ण प्रेम व श्रद्धा के साथ करना चाहिए। 'मन्त्र' का उच्चारण शुद्ध और स्पष्ट होना चाहिए। न अधिक तेज और न अधिक धीमे ही होना चाहिए।

'माला' को रुद्र-रूप समझकर उसका पूजन करना चाहिए। माला को पृथ्वी पर नहीं रखना चाहिए। जहाँ तक हो, 'गोमुखी' में ही रखे या गले में पहिने रहना चाहिए अथवा खूंटी में टाँग देना चाहिए।

शास्त्रों में बताये हुए नाना प्रकार के 'जप'-विधानों में **'लिखित-जप'** भी अपना एक विशिष्ट महत्त्व रखता है। यह साधक को चित्त की एकाग्रता प्राप्त करने में सहायता प्रदान करता है, जिससे आगे चलकर **मानसिक जप व ध्यान** में सुगमता प्राप्त होती है।

लिखित 'जप' के लिए एक नोट-बुक होनी चाहिए, जिसमें नित्य नियत समय पर अपने इष्ट-देवता का मन्त्र लिखना चाहिए। मन्त्र लिखते समय, जहाँ तक हो, **मौन** रखना चाहिए और मन को इधर-उधर भागने न देना चाहिए। एक आसन पर एक समय में बैठकर मन्त्र लिखने के लिए एक विशेष संख्या नियत कर लेनी चाहिए। **'नोट-बुक'** को माला ही की भाँति पवित्र और माननीय समझकर बड़ी सावधानी से अपने 'साधना-गृह' में पवित्र स्थान पर रखना चाहिए।

'अखण्ड जप' छुट्टी के दिनों में अथवा किन्हीं पर्व-अवसरों पर किया जा सकता है। इसके लिए कोई मन्दिर या अन्य पवित्र स्थान होना चाहिए। इसमें पाँच, दस, बारह कितने भी व्यक्ति भाग ले सकते हैं। सबका मन्त्र एक ही होना चाहिए। यदि १२ घण्टे का **'अखण्ड जप'** किया जाए और यदि १२ व्यक्ति हों, तो प्रत्येक व्यक्ति के विभाग में १ घण्टा आएगा। प्रातः ६ बजे से प्रारम्भ कर, सायं ६ बजे समाप्त किया जा सकता है। प्रत्येक व्यक्ति को पारी - पारी, अपने - अपने समय पर उपस्थित रहना चाहिए। जिस व्यक्ति का जो समय हो, वह उसके पाँच मिनट पहिले ही पवित्र हो, **'आचमन व प्राणायाम'** कर पहिले से जप करते हुए व्यक्ति के पास आसन पर बैठकर धीरे-धीरे 'जप' करना आरम्भ कर दे, जिससे उस पहिलेवाले व्यक्ति को ज्ञात हो जाय कि अन्य

व्यक्ति उपस्थित हो गया है। प्रत्येक व्यक्ति को अपने **'जप'** को संख्या-गणना रखनी चाहिए। अन्त में **'अखण्ड जप'** की समाप्ति कर, कुल संख्या को जोड़कर, उसके दशांश की **'आहुतियाँ'** दी जा सकती हैं। ब्राह्मण-भोजन कराकर समाप्ति करनी चाहिए।

आयोजक : साधना - सम्बन्धी प्रारम्भिक बातों की कुछ जानकारी देने के बाद, 'साधना-शिविर' के दूसरे प्रपत्र के रूप में **श्री सतीश उपाध्याय जी** आध्यात्मिक साधना के सबसे आवश्यक अङ्ग प्रातः-कृत्य पर प्रकाश डाल रहे हैं, जिससे **'कर्म', 'भक्ति'** और **'ज्ञान'** — सभी मार्गों के जिज्ञासु लाभ उठा सकते हैं।

प्रातः-कृत्य की सरल विधि

(१) **गुरु-स्मरण**—ब्राह्म मुहूर्त में उठकर दोनों हाथों और पैरों को धोकर, अपने शिर में स्थित **सहस्र-दल-कमल** में विराजमान शङ्कर-स्वरूप श्रीगुरुदेव का ध्यान करे—

श्वेत - वर्णं द्वि-भुजं वराभय-करं श्वेत-माल्यानु-लेपनम्,
स्व - प्रकाश-रूपं स्व-वाम-स्थितया रक्त-शक्त्या सहितं गुरुम्।

(२) **मानसिक-गुरु-पूजन**—तब मानस पञ्चोपचारों से श्रीगुरु का पूजन करे—

लं पृथ्वी-तत्वात्मकं गन्धं स-शक्तिकाय श्रीगुरु - प्रीतये समर्पयामि नमः।
हं आकाश-तत्त्वात्मकं पुष्पं स-शक्तिकाय श्रीगुरु - प्रीतये समर्पयामि नमः।
यं वायु - तत्त्वात्मकं धूपं स-शक्तिकाय श्रीगुरु - प्रीतये घ्रापयामि नमः।
रं अग्नि-तत्त्वात्मकं दीपं स-शक्तिकाय श्रीगुरु - प्रीतये दर्शयामि नमः।
वं जल-तत्त्वात्मकं नैवेद्यं स-शक्तिकाय श्रीगुरु - प्रीतये समर्पयामि नमः।
सं सर्व-तत्त्वात्मकं ताम्बूलं स-शक्तिकाय श्रीगुरु - प्रीतये समर्पयामि नमः।

(३) **गुरु-नमस्कार**—फिर मन-ही-मन शङ्कर-स्वरूप गुरु को नमस्कार करे—

ॐ गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः, गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् पर-ब्रह्म, तस्मै श्रीगुरवे नमः॥
ॐ अज्ञान - तिमिरान्धस्य, ज्ञानाञ्जन - शलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन, तस्मै श्रीगुरवे नमः॥
ॐ अखण्ड - मण्डलाकारं, व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन, तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

(४) **पर-देवता-स्मरण**—इसके बाद **मूलाधार-चक्र** में विद्युत्-रूपा, सोई हुई सर्पिणी, नाना तत्त्वों से युक्त **महा-शक्ति कुण्डलिनी** के रूप में अपने इष्ट-देवता का ध्यान करना चाहिए। (यहाँ पर भगवती छिन्नमस्ता का ध्यान कर रहा हूँ)—

छिन्नमस्तां महा-विद्यामक्षरात्म-स्वरूपिणीम् । विद्युदग्नि-समुद्भूतां, प्रसुप्त-भुजगी-तनुम् ।।
कुण्डली-रूप-संयुक्तां, नाना-तत्त्व-समन्वितां । त्रिवली-वलयोपेतां, नाना-स्थान-कृतां शुभाम् ।।

(५) **पर-देवता का मानसिक-पूजन**—तब पर-देवता का 'मानसिक पूजन' करे तथा अन्त में **'फल-श्रुति'**–पाठ के अनुरूप अपने को निर्भय, सुखी, स्वच्छन्द तथा परम आनन्दित समझकर जीवन-निर्वाह हेतु दैनिक कार्यों में संलग्न करे। यथा—

मानस अर्चन शुभ यहाँ, करता हूँ दे ध्यान।
मिलती जिससे मुक्ति है, परमानन्द महान ।।१
पा छुट्टी सब काम से, आ बैठा एकान्त।
हूँ अब तो एकान्त में, करके मन को शान्त ।।२
हृदय-कमल में इष्ट का, करूँ प्रेम से ध्यान।
पूजन उसका यों करूँ, साधक परम सुजान ।।३
यह है आसन हृदय-कमल का, सुन्दर अति अभिराम।
हो आसीन इसी पर माता, तेरी मूर्ति ललाम ।।४
सहस्रार-स्रुत सुधा समर्पित, पाद-युग्म पर पाद्य-स्वरूप।
शिर पर अर्घ्य जननि ! है मन का, जो सब भाँति अनूप ।।५
वही सुधा है करो आचमन, और उसी से होवे स्नान।
शब्द-तत्त्व के वसन पहनिए, गंध-तत्त्व का गंध-विधान ।।६
पुष्प-रूप है चित्त समर्पित, और प्राण हैं धूप-स्वरूप।
तेज-तत्त्व यह विमल दीप, है नैवेद्य सुधा का कूप ।।७
शब्द अनाहत का घण्टा यह, वायु-तत्त्व का चामर भव्य।
इन्द्रिय-गण के कर्म सकल जो, और चपलता मन की नव्य ।।८
यही नृत्य माता ! है मोहक, करती जिसकी तू जोह।
अहङ्कार मद राग मोह औ, अद्वेष अदम्भ अमोह ।।९
अमात्सर्य अक्षोभ अलोभ, दश प्रकार के पुष्प समान।
और अहिंसा इन्द्रिय-निग्रह, दया क्षमा औ ज्ञान महान ।।१०

परम पुष्प ये पांच और भी, करता हूँ मैं मां तुम्हें प्रदान।
सुधा-सिन्धु औ मांस-शैल त्यों भर्जित मीनों की भी खान ।।११

मुद्रा-राशि भक्त घृत पूरित, पायस मधुर कुलामृत पूर।
काम-क्रोध पशु की बलि देता, होवें विघ्न आप सब दूर ।।१२

सकल मातृका की माला से जप की मैंने सहित विधान।
उसका फल तुझको मां ! अर्पित, ग्रहण कीजिए दे वरदान ।।१३

।। फल-श्रुति ।।

यह पूजा जो साधक करता, मिलता उसको परमानन्द।
रहता सदा घूमता जग में, निर्भय सुखी तथा स्वच्छन्द ।।

आयोजक ' प्रातः-काल उठकर मन में शुभ सङ्कल्पों, परमात्मा का स्मरण करने से, दिन भर शुभ सङ्कल्पों से हमारा सम्पर्क बना रहता है। मन प्रफुल्ल रहता है। सभी प्रकार की बाधाओं से मुक्ति प्राप्त होती है। आध्यात्मिक विचारों, निष्काम-भावों का सहज ही प्रस्फुटन होने लगता है। अतः निद्रा समाप्त होते ही, हम सभी को किसी-न-किसी रूप में **प्रातः-कृत्य** को अवश्य करना चाहिए। श्री उपाध्याय जी ने प्रातः-कृत्य की सुन्दर विधि सूचित की है। हम सभी उससे लाभ उठा सकते हैं।

प्रातः-कृत्य की विधि, महिमा की चर्चा के बाद **ठाकुर अमरसिंह जी** देवताओं को **'प्रणाम'** करने से क्या लाभ होता है एवं **'प्रणाम'** किस भाव से करना चाहिए, इस सम्बन्ध में संक्षेप में आपका ध्यान आकर्षित करेंगे।

'प्रणाम'-योग

'परमात्मा' को **'प्रणाम'** करना भक्त का प्रथम कर्तव्य है। **'प्रणाम'** करना खिलवाड़ नहीं है, इसकी एक कला है। इस असार संसार में, मन-ही-मन कल्पना द्वारा अथवा किसी मूर्त्ति के समक्ष, इष्ट-देवता के श्रीचरणों में सिर नवाकर, उनके सामने हाथ जोड़कर 'प्रणत'-भाव से खड़े होकर, **'स्तुति-पाठ'** करके कोई भी मनुष्य अपने किए हुए सांसारिक अच्छे-बुरे कर्म-समुद्र को पार कर, **'परमात्म-तत्त्व'** की उपलब्धि कर सकता है। यही **'प्रणाम'-योग** है।

'प्रणाम'-योग द्वारा यह तभी होता है, जब 'प्रणाम' करनेवाले का हृदय, 'प्रणाम' करता है। 'प्रणाम' करनेवाले की जीभ, 'स्तुति'-पाठ में लगी रहती है। चित्त, इष्ट-देवता में 'पूर्ण समर्पित' रहता है और दोनों हाथ, इष्ट-देवता की **'सेवा-पूजा-प्रणाम'** में ही लगे रहते हैं। अथवा, 'प्रणाम' करनेवाले की जब यह धारणा पक्की हो जाती है कि 'मस्तक' धारण करने का लक्ष्य है——**आराध्य को 'प्रणाम करना'**। 'हाथ' धारण करने का लक्ष्य है—**उनसे अराध्य की पूजा करना**। 'मन' धारण करने का लक्ष्य है—**उससे अपने आराध्य के गुणों और कर्मों का सदा चिन्तन करना**। 'जीभ' को धारण करने का लक्ष्य है—**आराध्य के गुणों, चरितों का पाठ तथा उच्चारण**। अन्यथा, शरीर धारण करना निष्फल है।

उक्त 'प्रणाम'-योग का अभ्यास करना अत्यन्त सरल है। 'प्रणाम' करने में किसी प्रकार की **रुकावट नहीं। सभी समय और सर्वत्र 'प्रणाम' कर सकते हैं।** बिना खर्च, बिना मुहूर्त्त या शुभ तिथि के

ही, जब और जिस अवस्था में हों, 'प्रणाम' कर सकते हैं। किसी भी अवस्था में - चाहे मार्ग में चल रहे हों, वाहन में बैठकर जा रहे हों, अपने कार्य में लगे हों, मन-ही-मन आराध्य देव का 'ध्यान' कर उन्हें सभक्ति 'प्रणाम' कर सकते हैं। इससे बहुत लाभ होता है। जीवन का क्षण-मात्र भी बेकार नहीं जाता। शुभ विचारों की सृष्टि होकर, अशुभ संसार से सहज ही मुक्ति मिल जाती है।

अतः 'प्रणाम' करने से कभी भी चूकना नहीं चाहिए। प्रातः-काल उठने से लेकर रात्रि में शयन करने तक 'प्रणाम' करने का अभ्यास करना चाहिए।

[**'साधना-शिविर'** के प्रथम दिन की समाप्ति **'जगन्मा ! सदा याद तेरी दिलाना'** गीत के सस्वर पाठ से। पं० विश्वनाथ पाण्डेय द्वारा 'उपदेश-मुक्तावली', भजन-संग्रह, संख्या ७ की प्रस्तुति।]

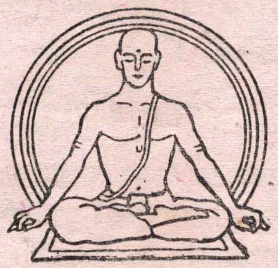

कार्तिक शुक्ला ८, २०४९ वि०, सोमवार तदनुसार २ नवम्बर, १९९२

पं० विश्वनाथ पाण्डेय द्वारा माँ छिन्नमस्ता की स्तुति **'जय छिन्न-शिरा भव-भाव-धरा'** का पाठ।

[**आयोजक** : परम पूज्य बाबाश्री मोतीलाल जी मेहता की **'जय छिन्न-शिरा'** स्तुति से हमें यह स्पष्ट रूप से ज्ञात हो जाता है कि दशो माँ की छवियाँ अत्यन्त विलक्षण हैं, विविध मननीय भावों से युक्त हैं, जिन्हें हम हृदयङ्गम कर सहज ही अपना जीवन धन्य कर सकते हैं।

परम पूज्य बाबाश्री के ही शब्दों में, माँ छिन्नमस्ता की मूर्त्ति से हमें यह ज्ञात होता है कि हम लोगों को **'करत्व'** (**अहं करोमि—**मैं करता हूँ) की भावना का त्याग कर, **'क्रिया-वाहनत्व'** के भाव को धारण करने का अभ्यास करना चाहिए। **'करत्व'** फलता है, जिससे बन्धन, जड़ता और शक्ति के ह्रास की प्राप्ति होती है। **'क्रिया-वाहनत्व'** सदैव मात्र पुष्प-वत् रहता है और इससे **स्व-सन्तोष**-रूपी ऐसी 'हवन-अग्नि' की प्राप्ति होती है, जो हमें **'काल'** के प्रतिकूल प्रभाव से सदैव बचाती रहती है। फल-स्वरूप अतिशय आनन्द और चैतन्य की ऐसी अपूर्व छटा का सान्निध्य प्राप्त होता है कि जीवन स्वतः धन्य एवं कृत-कृत्य हो जाता है।

'क्रिया' बीज-रूप धारण न करे और **अपनी है**—ऐसा भाव न आए, इसलिए जीवन के निर्वाह का भाव सदैव 'आहुति'-समान रखना चाहिए। ये भाव माँ छिन्न-मस्ता की मूर्त्ति द्वारा स्पष्ट रूप से उजागर होते हैं। माँ ने, अपने हाथों, अपने 'शीश' को काटा है अर्थात् **'अहं-करत्व'** के भाव को नष्ट किया है। 'रक्त-पान' द्वारा वे **'क्रिया-वाहनत्व'** को दर्शा रही हैं। 'डाकिनी-राकिनी' के 'रक्त-पान' द्वारा, वे **अविद्या-विद्या** (अर्थात् सभी प्रकार की भूख—सांसारिक/पारमार्थिक) हेतु **'आहुति'-भाव** को स्पष्ट कर रही हैं।

स्पष्ट है, यदि हम माँ की इस विलक्षण मूर्त्ति का सदैव चिन्तन करें, आत्म-शुद्धि कर **माँ** के आवाहन-सहित उनका नित्य-पूजन करें, तो हम भी माँ की भाव-मूर्त्ति से एकाकार होकर, साक्षात् 'माँ'-स्वरूप होकर अपने जीवन को धन्य कर सकते हैं।

हमारी पुण्य-भूमि 'भारत' में, हमारे ऋषियों-मुनियों के परिश्रम से ऐसी एक नहीं, दश मूर्त्तियाँ हैं। उनके अनेकानेक भेद और अङ्ग-मूर्त्तियाँ हैं। अपनी-अपनी इच्छा और रुचि के अनुसार, किसी भी एक मूर्त्ति को **'इष्ट'** मानकर, हम सभी अपने **जीवन का 'कल्याण'** साधित कर सकते हैं। ऋषि-मुनियों ने हमारी सरलता के लिए विलक्षण मूर्त्तियों की ही रचना नहीं की है, अपितु ऐसी क्रियाओं को भी समाज के समक्ष प्रस्तुत किया है, जिनसे हमारे जैसे 'अल्प'-बुद्धिवाले, अशुद्ध भाववाले भी कुछ पा सकते हैं। उदाहरण के रूप में **'कुल-रत्न' श्री वीरेन्द्र गिरि जी** (पटना, बिहार) का **दश महा-विद्याओं की पञ्च-शुद्ध्यात्मक पूजा** नामक प्रपत्र प्रस्तुत है।]

दश महा-विद्याओं की पूजा

दश महा - विद्याओं की पूजा पाँच प्रकार के शोधन के सिद्धान्त पर आधारित है। शोधन अर्थात् पवित्र बनाना। ये पाँच शुद्धियाँ हैं—**१ पूजा-स्थान की शुद्धि, २ साधक-देह की शुद्धि, ३ पूजा-द्रव्य की शुद्धि, ४ देव-शुद्धि** और **५ मन्त्र-शुद्धि**। इन्हीं पञ्च-शुद्धियों को आधार मानकर हमारे यहाँ सभी प्रकार के पूजन-विधानों का विस्तार किया गया है। जब कोई व्यक्ति 'गुरु' से 'दीक्षा' अर्थात् विधि-पूर्वक उपदेश ग्रहण करता है, तब उसको अपने इष्ट-देवता का पूजन-भजन इन्हीं पाँच शुद्धियों को समझकर उनके अनुसार समस्त साधनों को पवित्र बनाकर करना पड़ता है।

तान्त्रिक पञ्च - शुद्ध्यात्मक अर्चन का अपना विशेष महत्त्व है क्योंकि शक्ति की साधना में **'भाव-शुद्धि'** की ही प्रधानता है। जब तक **'पशु - भाव'** दूर नहीं होगा, साधना में किसी प्रकार की उल्लेखनीय सफलता नहीं मिल सकती। **'पशु-भाव'** को दूर करने में पाँच शुद्धियाँ साधक को अचूक सहायता करती हैं। इन पाँच शुद्धियों की मुख्य विशेषता यह है कि साधक जैसे ही गुरु-देव से 'दीक्षा' पाता है, वैसे ही वह इनकी सहायता से देवता की उपासना या साधना करने की योग्यता सहज ही प्राप्त कर लेता है। उसका **'पशु-भाव'** दूर होने लगता है और वह क्रमशः नित्य **देव-भाव** की उपलब्धि करने लगता है। फल-स्वरूप साधना-मार्ग में उसे अग्रसर होने में कोई कठिनाई नहीं होती।

पाँच शुद्धियों को जानकर साधक सबसे पहले स्नान आदि कर पूजा-गृह में मन्त्रों द्वारा **'पूजा-स्थान का शोधन'** करता है। फिर 'आसन' पर स्थित होकर **'आसन-शोधन'** करता है। तब 'प्राणायाम', 'भूत-शुद्धि' तथा न्यास आदि की क्रियाओं द्वारा **अपने शरीर का शोधन** कर अपने विशुद्ध देव-भाव-मय शरीर में वह मन्त्रों द्वारा **'इष्ट - देवता की प्राण - प्रतिष्ठा'** एवं मन-ही-मन सूक्ष्म पूजन **(अन्तर्यजन)** करता है।

इसके बाद, बाह्य पूजन के लिए वह पहले से एकत्र **पूजा-सामग्री का शोधन मन्त्रों द्वारा** करता है। तदनन्तर वह एक विशेष क्रिया के द्वारा इष्ट-देवता का आवाहन एक पुष्प में कर उसे 'यन्त्र-राज' में प्रतिष्ठित करता है। फिर वह सकलीकरण, अवगुण्ठन, संरक्षण, अमृतीकरण आदि क्रियाओं के द्वारा इष्ट-देवता का **विशोधन** करता है।

तदनन्तर इष्ट-देवता की प्राण-प्रतिष्ठा कर वह षोडश उपचारों से उनकी पूजा करता है। इसके बाद वह इष्ट-देवता से भावना द्वारा अनुमति लेकर उनके अङ्ग-देवताओं का भी यथा-विधि पूजन-तर्पण कर उन्हें पूर्ण रूप से सन्तुष्ट करता है। तब वह **इष्ट-मन्त्र का 'शोधन'** एवं 'जप' कर, कवच-स्तोत्रादि का पाठ करता है। अन्त में, आत्म-समर्पण कर साधक देवता का विसर्जन कर, उन्हें पुनः अपने हृदय में प्रतिष्ठित कर लेता है।

इस प्रकार **'देव-भाव'** में स्थित होकर साधक विलक्षण आनन्द की उपलब्धि करता है।

यही योगी लोगों का **'लय-योग'** है। पहले **'पूजा-स्थान का शोधन'** करके अपनी **'आत्मा' का शोधन** करना। फिर अपने **इष्ट-मन्त्र का शोधन** करना। तब 'पूजा-द्रव्यों का शोधन' कर इष्ट-देवता का संस्कार कर, उसे चैतन्य करना। इस प्रकार अपने को एवं अपने आस-पास के वातावरण को विशुद्ध बनाकर, इष्ट-देवता की पूजा में निरत होना—इन सभी क्रियाओं को करने के लिए कितनी तन्मयता की आवश्यकता है, यह हम—आप सहज ही अनुभव कर सकते हैं। इसे हम **लय-योग** न कहेंगे, तो फिर क्या कहेंगे ? निश्चय ही, यह **लय-योग** का सुन्दर उपक्रम है, जिसे हम-आप नित्य अपना कर सहज ही दिव्य अनुभूति की उपलब्धि कर सकते हैं।

[**आयोजक :** दश महा-विद्याओं की पूजा अथवा 'लय'-योग के सुन्दर उपक्रम की चर्चा के वाद **डा० प्रमोद पालीवाल** (रोहतक, हरियाणा) आपके समक्ष **तान्त्रिक-पूजा के कुछ सङ्केतों की चर्चा** करेंगे, जिसे हम-आप सभी जिज्ञासु बन्धु ध्यान-पूर्वक सुनना चाहेंगे।]

तान्त्रिक-पूजा के संकेतों के अर्थ

तान्त्रिक-पूजा के सम्बन्ध में लोगों में बड़ा भ्रम फैला हुआ है। प्रायः यही समझा जाता है कि तान्त्रिक-पूजा के द्वारा मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण जैसे षट्-कर्म ही किए जाते हैं, किन्तु ऐसा है नहीं। सच तो यह है कि हिन्दू-समाज की छोटी-से-छोटी तथा बड़ी-से-बड़ी सभी पूजा-विधियाँ तन्त्र-शास्त्र के ही नियमों पर आधारित हैं। इन पूजा-विधियों के द्वारा सांसारिक कामनाओं की पूर्ति तो होती ही है, साथ ही मानव-जीवन के परम लक्ष्य—**'मोक्ष'** की भी उपलब्धि होती है।

तान्त्रिक-पूजा में शरीर, वाणी और मन की सहायता से कम पढ़ा-लिखा व्यक्ति भी 'परमात्म-तत्त्व' का ज्ञान प्राप्त कर अपना और दूसरों का कल्याण सहज ही कर सकता है। **'तान्त्रिक-पूजा'** वास्तव में 'मन्त्र' की साधना है। इस साधना के मुख्य अङ्ग हैं—**१ विनियोग, २ न्यास, ३ षडङ्ग-न्यास, ४ ध्यान** और **५ मानस पूजन-पूर्वक जप। आवाहन** से आरम्भ होकर **'विसर्जन'** तक यह विज्ञान-सम्मत साधना सम्पूर्ण होती है। तान्त्रिक-साधना के इन मुख्य अङ्गों के अभिप्राय को ठीक-ठीक समझ न पाने के कारण ही लोगों को प्रायः पूजन की क्रियाओं के सम्बन्ध में भ्रम होता है। साथ ही यथार्थ भाव को न जानने के कारण उन्हें अभीष्ट-सिद्धि अर्थात् यथार्थ परमानन्द की अनुभूति भी नहीं हो पाती।

उदाहरण के लिए कुछ अहम्मन्य लोग उक्त भ्रम में पड़कर प्रायः कहा—सुना करते हैं कि **जो सर्व-व्यापक है, उसका 'आवाहन' कैसा ? जिसका रूप विराट् है, वह 'यन्त्र' के 'विन्दु'-जैसे सङ्कीर्ण स्थान में किस प्रकार रह सकता है ? जिसके एक-एक रोम-कूप में ब्रह्माण्ड है, उसे बैठने को कौन-सा आसन दें ?** जो स्वच्छ व शुद्ध है, उसे **'पाद्य, अर्घ्य और आचमन' द्वारा शुद्धीकरण की क्या आवश्यकता ?**

जो नित्य-तृप्त है, उसको नैवेद्य क्यों ? जो स्वयं प्रकाश है, उसे नीराजन या दीप दिखलाना क्यों ? जो भीतर-बाहर सर्वत्र है, उसका विसर्जन कैसे ? इत्यादि।

उक्त प्रश्न तर्क-वितर्क-प्रेमियों को आकर्षक एवं बुद्धि-सम्मत लग सकते हैं, किन्तु निष्पक्ष होकर विचार करने से इन प्रश्नों का खोखलापन सहज ही समझ में आ जाता है। यहाँ हम **तान्त्रिक-साधना** के कुछ सङ्केतों के प्रति आपका ध्यान आकर्षित कर रहे हैं, जिससे उनका अभिप्राय स्पष्ट हो सके।

१ पूजा-स्थान में द्वार-देवताओं की पूजा—१ धर्म, २ अर्थ, ३ काम और ४ मोक्ष-रूपी शरीर की चार भूमिकाओं का पूजन।

२ विघ्नोत्सारण——बाहरी और भीतरी द्वैत-भावना की बाधाओं को दूर करना।

३ सङ्कल्प——शुद्ध क्रियाओं एवं भावनाओं के अनुशासन को स्वीकार करना।

४ आसन-शोधन——चित् - शक्ति में आत्म - समर्पण या आत्मा से तादात्म्य - भाव में पहुँचने की तैय्यारी।

५ आचमन——स्थूल, सूक्ष्म और कारण-शरीर का शोधन।

६ शिखा-बन्धन——आत्म-अन्वेषण हेतु चित्त-वृत्ति का दृढ़ीकरण।

७ दिग्-बन्धन——पञ्च-कर्मेन्द्रिय और पञ्च-ज्ञानेन्द्रिय द्वारा सम्पन्न होनेवाली भूमिकाओं को अनुशासित करना।

८ देह-शुद्धि——अहङ्कार की भावना से मुक्ति पाने का प्रयास।

९ गुरु आदि को प्रणाम——विमर्श और विद्या-शक्ति के क्षेत्र में प्रवेश।

१० प्राणायाम—'मन' का निरोध।

११ विनियोग—'मन्त्र' अर्थात् अभीष्ट देवता के स्वरूप का परिचय।

१२ ऋष्यादि-न्यास—सभी अङ्गों में अभीष्ट देव-भाव की स्थापना।

१३ षडङ्ग (कर एवं अङ्ग - न्यास)—मैं कर्त्ता नहीं हूँ, न मेरा कार्य है, मैं केवल साक्षी हूँ—इस भाव की प्राप्ति।

१४ भूत-शुद्धि—इदन्ता-भाव (इदं तत्—यह और वह) को हटाना।

१५ प्राण-प्रतिष्ठा-देवता के प्राणादि समस्त अङ्गों से तादात्म्य-भाव स्थापित करना।

१६ न्यास-जाल-अविद्या-रूपी परम शत्रु से सुरक्षित होने का प्रयास।

१७ सम्विदा-ग्रहण-भाव-मयी चेतना का विकास।

१८ भैरव-आज्ञा-ग्रहण-अविद्या (अज्ञान) से रहित कर देने की प्रार्थना।

१९ अन्तर्याग-अद्वैत-भावना से आत्म-निवेदन।

२० बहिर्याग—स्व-आत्म-स्वरूप का साक्षात्कार एवं आनन्द की उपलब्धि।

२१ आवरण-पूजा—चित्-शक्ति के ध्यान का सतत अभ्यास।

आयोजक : **'कुल-रत्न' श्री वीरेन्द्र गिरि** द्वारा प्रस्तुत **दश महा-विद्याओं की पूजा एवं डा० प्रमोद पालीवाल** द्वारा प्रस्तुत **'तान्त्रिक पूजा के सङ्केतों का अर्थ'** विशेषतया 'दीक्षा-प्राप्त' साधकों के लिए उपयोगी है। जो बन्धु 'दीक्षा' - प्राप्त नहीं हैं, उनके लिए भगवती माँ की प्रसन्नता और अपने धर्म-भाव की पुष्टि हेतु अपनी **इष्ट-देवता की प्रार्थना** करना ही एक-मात्र श्रेष्ठ उपाय है। ऐसे बन्धुओं को प्रतिदिन प्रातः-सायं इसके लिए कुछ-न-कुछ समय अवश्य देना चाहिए। अतः अब पं० **कृष्णमुरारी तिवारी**

(पटना बिहार) एक ऐसी सरल प्रार्थना-विधि प्रस्तुत कर रहे हैं, जिससे कोई भी प्रतिदिन कम समय देकर ही लाभ उठा सकता है। जो दीक्षा'-प्राप्त बन्धु नियमित साधना-नित्यार्चन करते हैं, वे भी अपने धर्म-भाव की अभिवृद्धि के लिए नित्यार्चन के अन्त में इस तरह की सविधि प्रार्थना कर सकते हैं। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि जो बन्धु **भगवती काली के उपासक** न हों, वे जहाँ-जहाँ पर **भ० काली का ध्यान, मन्त्र** आदि का उल्लेख है, वहाँ-वहाँ पर अपनी **इष्ट-देवता का ध्यान, मन्त्र-जप** करना समझेंगे। जो बन्धु दीक्षित नहीं हैं, वे मन्त्र-जप को छोड़कर **सविधि ध्यान-सहित केवल प्रार्थना** कर सकते हैं।

इष्ट-देवता की प्रार्थना-विधि

प्रार्थना का समय : प्रातः-काल, मध्याह्न-काल, सायं-काल और निशा-काल। (समय सुविधानुसार—किन्तु जो समय निश्चित करे, उस पर दृढ़ रहे)।

१ **ध्यान**—सर्व-प्रथम शुद्ध होकर शुद्ध आसन पर बैठकर अपने सामने एक दीपक जलाकर रखे। उस दीपक को ज्योति में अपनी इष्ट-देवता का ध्यान करे। भगवती काली का एक 'ध्यान' इस प्रकार है—

शवारूढां महा-भीमां घोर-दंष्ट्रां हसन्मुखीम्। चतुर्भुजां खड्ग-मुण्ड-वराभय-करां शिवाम्॥
मुण्ड-मालां धरां देवीं ललज्जिह्वां दिगम्बराम्। हृदि सञ्चिन्तयेत् कालीं श्मशानालय-वासिनीम्॥

इस प्रकार ध्यान कर गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य—इन पञ्चोपचारों अथवा मानस उपचारों से भगवती का पूजन करे।

२ **जप**—इसके बाद अपने मूल-मन्त्र (अर्थात् गुरुदेव से दीक्षा में प्राप्त मन्त्र) का 'जप' करे। जप कर चुकने पर भगवती को अपने जप का फल अर्पित करे। यथा—

ॐ गुह्याति-गुह्य-गोप्त्री त्वं, गृहाणास्मत् कृतं जपम्।
सिद्धिर्भवतु मे देवि!, त्वत् - प्रसादान्महेश्वरि! ॥

३ **प्रार्थना**—इसके बाद 'प्रार्थना' करे। यथा—

(क) हे माँ काली! मुझको एक-निष्ठ प्रेम, भक्ति और अचल श्रद्धा दो।

(ख) हे माँ! तू जगत्-नियन्त्री है, मैं तुम्हारा तुच्छ सेवक हूँ, मुझे स्वीकार करिए।

(ग) हे माँ! गङ्गा-यमुना की पवित्र धारा की तरह तू मेरी आत्मा को अपने में बहने दे।

(घ) हे माँ! मुझमें शक्ति नहीं, भक्ति नहीं। तेरी कृपा से मुझसे प्रशंसनीय कार्य हो सकते हैं। अतः आशीर्वाद दो माँ, मेरा मन सदैव तेरे चरणों में लगा रहे।

(ङ) हे माँ! मैं यन्त्र हूँ और तू यन्त्री। मैं घर हूँ और तू उसमें रहनेवाली स्वामिनी। मैं रथ हूँ और तू रथी। मैं सदा वही करना चाहता हूँ, जिसके लिए तू आज्ञा करती है। अतः हे माँ! इस हेतु मुझे शक्ति दो।

(च) हे जगदम्ब ! प्रकृति माता की रहस्य-मयी लीला को समझने की मेरी लालसा है। उसे समझाने के लिए सद्-गुरुओं के दर्शन मुझे समय-समय पर कराती रहो, जिससे उनके सत्सङ्ग से मेरी कामना पूरी हो सके।

(छ) हे परमेश्वरि ! आप तेज-स्वरूपा हैं। कृपा करके मुझे तेजस्वी बनाइए।

(ज) माँ ! आप ही ओज-स्वरूपा हैं। कृपा करके मुझे भी ओजस्वी कीजिए।

(झ) माँ ! आप में अपार सहन-शक्ति है। अतः मुझे भी सहन-शक्ति दीजिए।

(ञ) माँ ! मैं तेरा ही अंश हूँ। मेरा मार्ग प्रदर्शित कीजिए।

४ पुनः ध्यान—पुनः पूर्वोक्त विधि से इष्ट-देवता के स्वरूप का 'ध्यान' करे।

५ भावना—इसके बाद इस प्रकार की भावना करे—मैं ही देवी हूँ, अन्य नहीं। मैं ही ब्रह्मा, मैं ही विष्णु, मैं ही शिव हूँ। मैं ही अविनाशी, सर्व-व्यापक, आनन्द-स्वरूप हूँ।

६ आत्म-ध्यान—इसके बाद 'आत्म-ध्यान' करे। यथा—'मैं एक केन्द्र हूँ। मेरे इर्द-गिर्द मेरा संसार घूम रहा है। मैं प्रभाव और शक्ति का केन्द्र हूँ। मैं विचार और चेतना का केन्द्र हूँ। मैं शरीर से परे हूँ। मैं अमर हूँ ! मेरा कभी नाश नहीं हो सकता ! मुझमें अहङ्कार नहीं है।'

७ आनन्द-गान—इसके बाद उच्च स्वर से 'आनन्द-गान' करे। यथा—

तेरी कृपा-दृष्टि से सारे, भय विह्वल हो जाते भाग।
तेरी पूजा मङ्गल-कारी, मिलता फल जैसा अनुराग ॥
विनती करने से इच्छाएँ, फलीभूत सब होती हैं।
आधि-व्याधियाँ इधर-उधर सब, जा-जाकर के रोती हैं ॥

८ शान्ति-पाठ—सबसे अन्त में 'शान्ति-पाठ' करे ! यथा—

फैलि बढ़ै नित शान्ति चहूँ दिशि, मोद-प्रमोद दिखै दिखरावै।
मेल-मिलाप बढ़ै निशि-वासर, क्रूरता भागि छिपै दुरि जावै ॥
मातु बनै अनुकूल दया-मय, आपनि जान मया सरसावै।
होंय सुखी सब लोग भली विधि, दुःख कदापि न रञ्चहु पावैं ॥१
मङ्गल लाभ करैं नित साधक, स्वस्थ निरोग सदा दिखरावैं।
बाधक जे ग्रह होंय शुभङ्कर, भावन को दुख मेटि भगावैं ॥
लोक-क्रिया सुठि होंय फल-प्रद, जीवन सिद्ध करैं हरषावैं।
होंय सुखी सब लोग भली विधि, कष्ट कदापि न रञ्चहु पावैं ॥

[**आयोजक** : पं० कृष्णमुरारी तिवारी द्वारा प्रस्तुत **इष्ट-देवता की सरल-प्रार्थना-विधि** नित्य 'भावना'-शुद्धि का एक सुन्दर उदाहरण है। आजकल अधिकांश लोगों की समस्या समय का अभाव है। ऐसे लोगों के लिए यह **सविधि - प्रार्थना** बहुत उपयोगी है। ठीक इसी की भाँति, अब आपके समक्ष **श्री विपिन महाजन (जालन्धर)** 'चित्त'-शुद्धि हेतु **महा-शक्ति कुण्डलिनी की साधना** नामक प्रपत्र प्रस्तुत कर रहे हैं, जो ब्रह्म-लीन स्वामी शाश्वतानन्द जी सरस्वती की कृपा से प्राप्त है और बहुत ही कम समय में 'सिद्धि'-दायक है।]

महा-शक्ति कुण्डलिनी की साधना-विधि

(१) 'आसन' पर बैठकर रीढ़ की हड्डी (मेरु-दण्ड) को सीधा करें।

(२) ठोढ़ी को छाती से लगा लें और आँखें बन्द कर लें।

(३) **'मूलाधार'-चक्र** का ध्यान करें। वहाँ, **'वँ शँ षँ सँ'** वीज-युक्त चतुर्दल पद्म, पृथ्वी-वीज **'लं'**, ऐरावत, ब्रह्मा, डाकिनी आदि को देखते हुए, **'क्लीं'**-वीज के मध्य स्वयम्भू लिङ्ग से लिपटी हुई **महा-शक्ति 'कुण्डलिनी'** का दर्शन करें।

(४) भीतर जाती हुई श्वास—**'प्राण-वायु'** पर ध्यान दें, पर **'मूलाधार'-चक्र** का ध्यान न छूटे। (५) भीतर जाती हुई श्वास—'प्राण-वायु' को भावना-बल से **'मूलाधार' चक्र** तक ले जाएँ। (६) इसी समय, **'अश्विनी' मुद्रा** अर्थात् गुदा को ऊपर की ओर सिकोड़ कर खींचें। (७) भावना द्वारा, गुदा में रहनेवाली **'अपान-वायु'** से **'प्राण-वायु'** को मिलाएँ और सूक्ष्म ध्वनि होती सुनें।

(८) इस ध्वनि के साथ, विद्युत - जैसे प्रकाश की भाँति एक अत्यन्त सूक्ष्म तार की तरह **महा-शक्ति कुण्डलिनी** को उसी प्रकार की ध्वनि के साथ-साथ **'सुषुम्णा'-पथ** में ऊपर की ओर चढ़ते देखें।

(६) देखें कि प्रकाश का तार 'सहस्रार' में पहुँचा और वहाँ सूक्ष्म ध्वनि गूँजी।

(१०) अब, श्वास बाहर निकालें और श्वास के बाहर निकलने के साथ - साथ **'महा-शक्ति कुण्डलिनी'** को पुनः नीचे उतर कर **स्वयम्भू-लिङ्ग** से लिपटी हुई देखें।

(११) यह एक क्रम हुआ। इसी प्रकार दो। फिर तीन, इसी प्रकार 'माला' की मणियों अथवा 'कर'-माला द्वारा गिनते जाएँ।

विशेष— (क) यह ध्यान रखना है कि 'श्वास'-भीतर खींचने से लेकर 'कुण्डलिनी' के 'सहस्रार' में जाने तक का ध्यान, एक-साथ होगा। अर्थात् 'श्वास' धीरे-धीरे भीतर खींचते हुए ही, यह सब देखना है। **'श्वास'** को भीतर अस्वाभाविक तरीके से रोकना नहीं **है और 'श्वास' बाहर** निकालने के साथ **कुण्डलिनी** को नीचे उतरते ध्यान करना **है।**

(ख) भोजन करने के तुरन्त बाद यह 'ध्यान-क्रिया' न करनी चाहिए ।

(ग) जब तक कुछ दिखाई या सुनाई न दे, तब तक तीव्र भावना, अभ्यास से देखने और सुनने की चेष्टा करनी चाहिए । थोड़े ही दिनों में सब दिखाई देने लगेगा । **'सुषुम्णा - पथ'** में एक प्रकार का **'तेज'** प्रकाश हो जाएगा, **षट् - चक्र** साफ दिखाई देने लगेंगे ।

(घ) यदि लगन से, 'मन' से समस्त विचारों को निकालकर, **'एक चित्त'** से देखने की चेष्टा की जाए, तो अधिक समय नहीं लगता । पहले, **'सुषुम्णा'** में जगह-जगह तारे-से छिटके दिखाई देते हैं । शरीर के भीतर, कई स्थानों में तारे (प्रकाश के छींटें-से) दिखाई देने लगते हैं । **'चित्त'** में अपने आप उत्साह और उल्लास भर जाता है ।

(ङ) 'रात' को सोते हुए **'सिद्धि'** के लक्षणों को प्रकट करनेवाले **'स्वप्न'** आते हैं । यह ध्यान रखना चाहिए कि इन स्वप्नों को या जगते हुए भी कोई अनोखी बात यदि दिखाई दे या सुनाई पड़े अथवा अनुभव हो, तो उसे भूल कर भी किसी से न कहना चाहिए और न ही उनके आधार पर अपने 'अहं' का प्रदर्शन करना चाहिए अन्यथा **'सिद्धि'** लुप्त हो जाती है ।

'सिद्धि' के लक्षणों के सामने आते ही चुपचाप दूने उत्साह से 'साधना' में लग जाना चाहिए । किसी 'सिद्धि' का अभिमान 'मन' में न आना चाहिए, न ही किसी को 'चमत्कार' दिखाने का प्रयत्न करना चाहिए, भले ही अपना कितना ही बड़ा अपमान या हानि क्यों न होती हो ।

(च) सिद्धि के चक्कर से बचने के लिए, छ मास का **'मौन'-व्रत** धारण किया जा सकता है । इससे एक ओर एकान्त साधना हेतु अधिक समय की प्राप्ति हो सकेगी, तो दूसरी ओर क्षुद्र सिद्धियों के चक्कर से भी बच सकते हैं । **'मौन'-व्रत** केवल जीभ का नहीं, अपितु मस्तिष्क का भी होना चाहिए ।

[**'साधना-शिविर'** के दूसरे दिन की समाप्ति **'जय विश्वेशि विश्व-विधायिनि माँ'** गीत के सस्वर पाठ से । पं० विश्वनाथ पाण्डेय द्वारा 'उपदेश-मुक्तावली', भजन-संग्रह संख्या ३ की प्रस्तुति ।]

जय विश्वेशि, विश्व-विधायिनी—टेक
वर अभय-दायिनि काल-पायिनि स्व-जन-पालिनि माँ ।।जय०
काल-कारण-कारिणी त्वं, आदि आद्या अखिल-जननी ।
ज्ञान दिव्य सु-अञ्जिनी पद - पुरुष-रञ्जिनि माँ ।।जय०

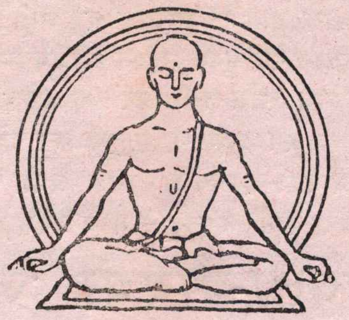

कार्त्तिक शुक्ला नवमी, २०४९ वि०, बुधवार तदनुसार ३ नवम्बर, १९९२

पं० विश्वनाथ पाण्डेय द्वारा **'जय जगदम्ब ! जय जगदम्ब !'** स्तुति ('उपदेश-मुक्तावली', भजन-संख्या १६) का स-स्वर पाठ ।

जय जगदम्ब, जय जगदम्ब ! गुण-पर, शक्ति-सार जगदम्ब ! ।
जय जगदम्ब, जय जगदम्ब ! पराऽऽनन्द, पर-तर जगदम्ब ! ।।
जय जगदम्ब, जय जगदम्ब ! त्रि-गुण तार, गति-पर जगदम्ब ! ।
जय जगदम्ब, जय जगदम्ब ! रङ्ग - रूप - सर-पर जगदम्ब ! ।।

[**आयोजक** : यह विश्व अनेक प्रकार के सम्बन्धों से परिपूर्ण है । प्रत्येक प्राणी, अपने **'सम्बन्ध'** की दुनियाँ में जीता है । जिस व्यक्ति का विविध वस्तुओं एवं व्यक्तियों से जितना अधिक **'सम्बन्ध'** होता है, वह उतना ही सम्पन्न समझा जाता है, किन्तु यह सम्पन्नता प्रत्येक 'मानव'-शरीर-धारी प्राणी के लिए उस समय विपन्नता या दरिद्रता बन जाती है, जब उसका **'सम्बन्ध'** केवल बाह्य व्यक्तियों और वस्तुओं तक ही सीमित रहता है क्योंकि बाह्य वस्तुओं का **'सम्बन्ध'** कभी-भी सदा के लिए सम्भव नहीं है । किसी-न-किसी दिन उनसे **'विच्छेद'** हो ही जायगा । अतः 'मानव'-शरीर-धारी-प्राणी को वास्तविक 'सुख' एवं 'आनन्द' की प्राप्ति के लिए आन्तरिक **'आत्म - शक्ति'** से **'सम्बन्ध'** स्थापित करना बहुत आवश्यक है ।]

'आत्म-शक्ति' के सम्बन्धों की दुनियाँ में, **जगदम्बा के श्री-चरणों से सम्बन्ध** स्थापित होना सबसे अधिक आनन्द-दायक है। गुप्तावतार बाबा श्री के भजन—**'जय जगदम्ब, जय जगदम्ब !'** के अनुसार **'जगदम्बा के श्री-चरणों का सम्बन्ध'** गुण-पर, शक्ति-सार, परा-आनन्द, पर-तर, त्रिगुण-तार, गति - पर, रङ्ग-रूप-रस-पर, अनघ-अनन्त-अपार, ब्रह्म-सार, चित् - पर, विश्व-सार, सत्य-आनन्द-सार, चिद्-आनन्द, व्यापक, सर्व-रूप-रस-मय, अलख और निरञ्जन है । अतः हमें चाहिए कि सर्वदा 'जगदम्ब !' 'जगदम्ब !' पुकारते रहें ।

'सम्बन्ध' ही असली धन है । भौतिक जगत् के माता - पिता, पुत्र - पुत्री, बन्धु-बान्धव, इष्ट-मित्र आदि सम्बन्धों के महत्त्व से यह बात सहज ही स्पष्ट है । आध्यात्मिक जगत् में भी श्री जगदम्बा के श्री-चरणों से **'सम्बन्ध'** तभी सम्भव है, जब इस **'सम्बन्ध'** की **'इच्छा'** प्रत्यक्ष **'क्रिया'**-रूप में परिणत

होती है। **पूजा-पाठ, उपासना-आराधना और नाम-जप** करते-करते यह **'सम्बन्ध'** जागता है तथा क्रमशः दृढ़ होता है। मात्र 'विचार' या 'भाव' होने से **'सम्बन्ध'** दृढ़ नहीं हो सकता।

'साधना-शिविर' के आयोजन का मुख्य उद्देश्य श्रीजगदम्बा के श्री-चरणों से **'सम्बन्ध'** स्थापित करने का भाव जगाना ही है। अतएव **'साधना-शिविर'** के अन्तिम तीसरे दिन, इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु हम यहाँ कुछ अन्य क्रियाओं का स्पष्टीकरण प्रस्तुत कर रहे हैं। सबसे पहले **श्रीविजय वत्स जी** (पटना, बिहार) **इष्ट-देवता की गायत्री-जप-विधि** नामक प्रपत्र पढ़ रहे हैं, जो 'राष्ट्र-गुरु' परम पूज्य स्वामी जी महाराज ('श्री पीताम्बरा पीठ', दतिया—मध्य प्रदेश) की कृपा से प्राप्त है।

इष्ट-देवता-गायत्री 'जप'-विधि

(१) ताम्र-पात्र (**पञ्च-पात्र**) में लाल चन्दन, दूर्वा (दूब) से युक्त 'जल' रक्खे। दाएँ हाथ में पञ्च-पात्र की **आचमनी** द्वारा 'जल' लेकर, **सङ्कल्प** पढ़ कर 'जल' छोड़—

ॐ तत् सत्। अद्यैतस्य ब्रह्मणोऽह्नि द्वितीय-प्रहरार्धे, श्रीश्वेत-वाराह-कल्पे, जम्बु-द्वीपे, भरत-खण्डे अमुक-प्रदेशान्तर्गते, अमुक पुण्य-क्षेत्रे, कलि-युगे, कलि-प्रथम चरणे, अमुक-नाम-सम्वत्सरे, अमुक-मासे, अमुक-पक्षे, अमुक-तिथौ, अमुक-वासरे, अमुक-गोत्रोत्पन्नो, अमुक-नाम-शर्माऽहं [वर्माऽहं, दासोऽहं वा] **श्रीछिन्नमस्ता-देव्याः प्रीतये स्नानं करिष्ये।**

(२) फिर **'प्राणायाम'** करे। तदनन्तर हृदय, शिर, शिखा, दोनों भुजा-मध्य, नेत्र-त्रय और करतल—इन छः अङ्गों का विधिवत् स्पर्श करते हुए **'षडङ्ग-न्यास'** करे।

(३) तब, **स्नानीय जल** में **अंकुश-मुद्रा** द्वारा **सूर्य-मण्डल** से तीर्थों का आवाहन करे—

ॐ गङ्गे च यमुने चैव, गोदावरि सरस्वति !
नर्मदे सिन्धु कावेरि ! जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ॥

'वं' से **धेनु-मुद्रा** द्वारा स्नानीय जल का **अमृतीकरण**, **'हुं'** से **'अवगुण्ठन'** और **'फट्'** से उसका **संरक्षण** करे। फिर **'सूर्य'** को बारह जलाञ्जलियाँ देकर, **'इष्ट-देवता'** के **चरणों** से उस जल को निकला हुआ मानकर उससे 'स्नान' करे।

(४) 'स्नान' कर, **'सन्ध्योपासन'** करे। पहले **पञ्च-पात्र** के जल से तीन बार निम्न मन्त्र पढ़कर आचमन करे—ॐ **आत्म-तत्त्वाय स्वाहा**, ॐ **विद्या-तत्त्वाय स्वाहा**, ॐ **शिव-तत्त्वाय स्वाहा।**

(५) तदनन्तर, 'पञ्च-पात्र' के जल में '**ॐ गङ्गे च०**' मन्त्र से पूर्व-वत् तीर्थों का आवाहन करे, 'मूल-मन्त्र' अथवा ॐ **छिन्न-मस्तकायै नमः** से कुशाग्र-भाग (तर्जनी-मध्यमा-अनामा के सम्मिलित अग्र-भाग से) द्वारा तीन बार भूमि पर 'जल' छिड़ककर, उस 'जल' से आठ बार अपने मूर्धा का अभिसिञ्चन करे।

(६) तब, **षडङ्ग-न्यास** कर बाँएँ हाथ में जल ले और दाएँ से हाथ ढँक कर '**हं यं रं लं वं**' से तीन बार उसे अभिमन्त्रित करे। फिर 'मूल-मन्त्र' अथवा **ॐ छिन्न-मस्तकायै नमः** का उच्चारण करते हुए, टपकते हुए जल-विन्दुओं से **तत्त्व-मुद्रा** द्वारा अपने सिर पर सात बार '**अभ्युक्षण**' करे। शेष 'जल' को दाहिने हाथ में लेकर तेजो-रूप में 'ध्यान' करे। उसे '**इड़ा**'-**नाड़ो से** आकृष्ट कर, उसके द्वारा देह के भीतर स्थित कृष्ण-वर्ण के 'पाप' को धोकर, उस जल' को पाप-रूप '**ध्यान**' कर '**पिङ्गला**'-**नाड़ो** से निकाले और अपने सम्मुख 'मन' द्वारा कल्पित वज्र-शिला पर '**फट्**' से उस पाप-रूप 'जल' को पटक दे।

(७) इसके बाद हाथ-पैर धोकर 'पञ्च-पात्र' के 'जल' से '**आचमन**' करे।

(८) तब '**ॐ घृणिः सूर्य आदित्याय इदमर्घ्यं स्वाहा**' मन्त्र पढ़कर सूर्य' को '**अर्घ्य**' दे। 'सूर्य-मण्डल' में देवी छिन्न-मस्ता का 'ध्यान' कर उन्हें '**नमस्कार**' करे—

ॐ **सूर्य-मण्डलस्थायै श्रीछिन्न-मस्तायै नमः**।

(९) फिर **छिन्न-मस्ता-गायत्री** का ३, ११ या १०८ बार 'जप' करे—

ॐ वैरोचन्यै विद्महे छिन्न-मस्तायै धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात्।

(१०) 'जप' करने के बाद, सूर्य-मण्डल-स्थित देवी छिन्नमस्ता को **मानसिक प्रणाम** करे। 'भावना' द्वारा उनके दाहिने हाथ में **आचमनी** से 'जल' देकर 'जप' समर्पित करे। अन्त में, पुनः '**मानसिक प्रणाम**' करे।

[**आयोजक** : इष्ट-देवता से सम्बन्ध स्थापित करने के लिए यह बहुत आवश्यक है कि हम जो '**भोजन**' करें, वह शुद्ध हो क्योंकि 'अशुद्ध भोजन' के प्रभाव से शुद्ध तत्त्व से सम्बन्ध स्थापित नहीं हो पाता। इस हेतु, '**तन्त्र-शास्त्र**' में '**बटुक-बलि**', '**क्षेत्रपाल-बलि**', '**योगिनी-बलि**' आदि विविध उपाय हैं। यहाँ, **श्री वीरेन्द्र गिरि** (पटना, बिहार) एक बहुत ही सरल '**प्राण-यज्ञ-विधि**' प्रस्तुत कर रहे हैं।]

प्राण-यज्ञ-विधि

[१] 'उदर' में ब्रह्म-रूपी '**वेदो**' का ध्यान करे। भावना द्वारा उसमें आत्मा-रूपो '**अग्नि**' को प्रज्वलित देखे। फिर, 'भोजन' के पहले ग्रास (कौर) को उठाकर, इस अग्नि में '**प्राणाय स्वाहा**' मन्त्र कहकर 'आहुति'-रूप में 'ग्रास' को ग्रहण करे।

[२] इसी प्रकार, 'भोजन' के दूसरे कौर को '**व्यानाय स्वाहा**' कह कर, 'आहुति'-रूप में ग्रहण करे।

[३] 'भोजन' के तीसरे कौर को '**अपानाय स्वाहा**' कहकर, 'आहुति'-रूप में

ग्रहण करे और उक्त आत्मा-रूपि 'अग्नि' में 'हवन' करे। प्रत्येक 'ग्रास' में यहा भाव रखे।

[४] चौथे ग्रास (कौर) को **'समानाय स्वाहा'** कहकर, 'आहुति'-रूप में ग्रहण करे।

[५] पाँचवें ग्रास को **'उदानाय स्वाहा'** कहकर, 'आहुति'-रूप में ग्रहण करे।

इस प्रकार 'भोजन' करने से अन्तर में रहनेवाले 'विभु' को सन्तोष होता है। 'अन्न' के सभी दोष भस्मी-भूत हो जाते हैं।

[**आयोजक :** श्रीजगदम्बा के श्री-चरणों से सम्बन्ध स्थापित करने के लिए आज के **युग में 'नाम-साधना'** एक बहुत सरल एवं हित-कारी उपाय है। 'तन्त्र-शास्त्र' में श्रीजगदम्बा के विविध स्वरूपों के १०८ या १००८ नामों का विधान स्पष्ट - रूप में दिया गया है। इन नामों की सहायता से हम श्रीजगदम्बा का भाव-मय पूजन, तर्पण, हवन आदि—नित्य कर सकते हैं और सहज ही श्रीजगदम्बा के श्री-चरणों का सान्निध्य प्राप्त कर सकते हैं। जो बन्धु, 'दीक्षा' प्राप्त नहीं हैं, वे भी **'नाम-साधना'** से लाभ उठा सकते हैं क्योंकि इसके लिए कोई प्रतिबन्ध नहीं है। अतः **पं० सतीश उपाध्याय** (प्रयाग) भगवती छिन्न-मस्ता की चतुर्थ्यन्त १०८ नामावली प्रस्तुत कर रहे हैं।]

चतुर्थ्यन्त अष्टोत्तर-शत-नामावली

इस 'नामावली' के प्रत्येक **'नाम'** के द्वारा १ जप, २ पूजन, ३ पूजन-तर्पण और ४ होम कर सकते हैं। **'जप'** के लिए प्रत्येक नाम के आदि में 'ॐ' और अन्त में 'नमः' जोड़ लें। **'पूजन'** के लिए अन्त में **'पूजयामि नमः'**, **'पूजन-तर्पण'** के लिए **'पूजयामि नमः तर्पयामि नमः'** और होम के लिए **'नमः स्वाहा'** जोड़ लें। उदाहरण के लिए **'प्रथम नाम'** के चार रूप होंगे--**१ ॐ छिन्न-मस्तायै नमः**, **२ ॐ छिन्न-मस्तायै पूजयामि नमः**, **३ ॐ छिन्न-मस्तायै पूजयामि नमः तर्पयामि नमः** और **४ ॐ छिन्न-मस्तायै नमः स्वाहा**। १०८ नामों के चतुर्थ्यन्त रूप इस प्रकार हैं—

छिन्न-मस्तायै, महा-विद्यायै
महा-भीमायै, महोदर्यै
चण्डेश्वर्यै, चण्ड-मात्रे
चण्ड-प्रभञ्जिन्यै, मुण्ड-प्रभञ्जिन्यै
महा-चण्डायै, चण्ड-रूपायै
चण्डिकायै, चण्ड-खण्डिन्यै
क्रोधिन्यै, क्रोध-जनन्यै
क्रोध-रूपायै, कुह्वै, कलायै
कोपातुरायै, कोप-युतायै
कोप-संहार-कारिण्यै

वज्र-वैरोचन्यै, वज्रायै
वज्र-कल्पायै, डाकिन्यै
डाकिनी-कर्म-निरतायै
डाकिनी-कर्म-पूजितायै
डाकिनी-सङ्ग-निरतायै
डाकिनी-प्रेम-पूरितायै
खट्वाङ्ग-धारिण्यै, खर्वायै
खड्ग-खप्पर-धारिण्यै
प्रेतासनायै, प्रेत-युतायै
प्रेत-सङ्ग-विहारिण्यै

छिन्न-मुण्ड-धरायै
छिन्न-चण्ड-विद्यायै
चित्रिण्यै, घोर-रूपायै
घोर-दृष्ट्यै, घोर-रावायै
घनोदर्यै, योगिन्यै
योग-निरतायै, जप-यज्ञ-परायणायै
योनि-चक्र-मय्यै, योन्यै, योनि-चक्र-प्रवर्तिन्यै
योनि-मुद्रायै, योनि-गम्यायै
योनि-यन्त्र-निवासिन्यै, यन्त्र-रूपायै
यन्त्र-मय्यै, यन्त्रेश्यै
यन्त्र-पूजितायै, कीर्त्यायै
कपर्दिन्यै, काल्यै
कङ्काल्यै, कल-कारिण्यै
आरक्तायै, रक्त-नयनायै
रक्त-पान-परायणायै, भवान्यै
भूतिदायै, भूत्यै, भूति-दात्र्यै
भैरव्यै, भैरवाचार-निरतायै
भूत-सेवितायै, भैरव-सेवितायै
भीमायै, भीमेश्वर्यै
भीम-नाद-परायण्यै, भवाराध्यायै
भव-नुतायै, भव-सागर-तारिण्यै
भद्र-काल्यै, भद्र-तन्वै
भद्र-रूपायै, भद्रिकायै
महा-भद्रायै, सुभद्रायै
भद्र-पालिन्यै, सुभव्यायै
भव्य-वदनायै, सुमुख्यै
सिद्ध-सेवितायै, सिद्धिदायै
सिद्धि-निवहायै, सिद्ध-निषेवितायै
असिद्ध-निषेवितायै, शुभदायै
सुभगायै, शुद्धायै
शुद्ध-सत्त्वायै, शुभावहायै
श्रेष्ठायै, दृष्टि-मय्यै
दृष्टि-संहार-कारिण्यै, शर्वाण्यै
सर्वगायै, सर्वायै
सर्व-मङ्गल-कारिण्यै, शिवायै
शान्तायै, शान्ति-रूपायै
मृडान्यै, मदनातुरायै

[**आयोजक** : विलक्षण ध्यान एवं भाव-मयी दश महा-विद्याओं की साधना से जहाँ **'मोक्ष'** की प्राप्ति होती है, वहीं **'भोग', ऐश्वर्य, कार्य-कुशलता** आदि की प्राप्ति होती है। दश-माई के श्री-चरणों का सतत ध्यान करने से उनकी कृपा द्वारा **'अज्ञान'** का नाश होने से, सभी प्रकार की **आधि-व्याधियों से मुक्ति** मिलती है। उदाहरण-स्वरूप **डा० रामकीर्ति गाँधी (झाँसी)** मानव शरीर के ३२ आधारों में दश महा-विद्याओं के ध्यान करने की विशिष्ट विधि प्रस्तुत कर रहे हैं, जिसे हृदयङ्गम कर, हम अपने सूक्ष्म 'भाव'-जगत् की शुद्धि द्वारा विविध रोगों से मुक्ति पा सकते हैं, इसमें सन्देह नहीं। यह विधि परम पूज्य स्वामी शाश्वतानन्द सरस्वती जी की कृपा से प्राप्त है।]

दश महा-विद्या 'ध्यान' एवं रोग-मुक्ति

मानव शरीर के ३२ आधारों में, दश महा-बिद्याओं का षोडश प्रकाश-मय 'ध्यान' कर, विविध रोगों से आश्चर्य-जनक ढङ्ग से मुक्ति प्राप्त की जा सकती है। यह

अनुभूत 'प्रयोग' है। इस **'प्रयोग'** के लिए **स्व-शरीरस्थ** ३२ **आधारों** को अथवा जिस आधार में 'ध्यान' करना हो, उसे जान लेना चाहिए। **स्व-शरीरस्थ ३२ आधार** ये हैं—

१. सहस्रार, २. शत-दल गुरु-चक्र, ३. आज्ञा - चक्र, ४. नेत्र-मण्डल, ५. नासिका, ६. कर्ण, ७. गाल, ८. मुख-गह्वर [मुख-गह्वर में पाँच आधार हैं—1 दन्त-मूल, २ जिह्वाग्र, ३ तालु, ४ घण्टिका और ५ मुखाकाश], ९. कण्ठ, १०. फुफ्फुस (फेफड़े), 11. बगल, 12. भुजाएँ, १३, हृदय, १४. तिल्ली, 1५. जिगर (यकृत), 1६. गुर्दे (वृक्क), १७. छोटी

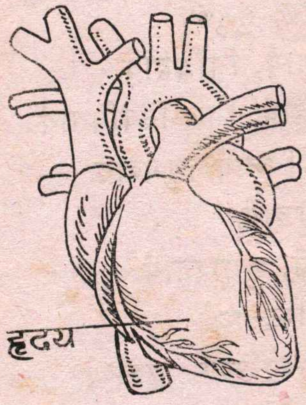

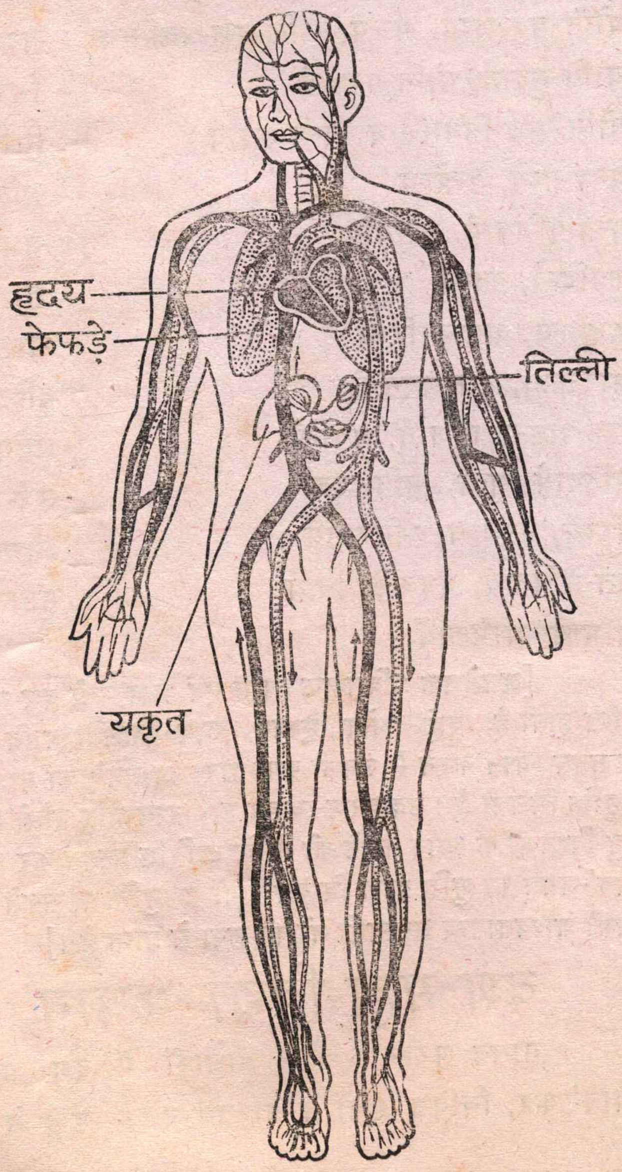

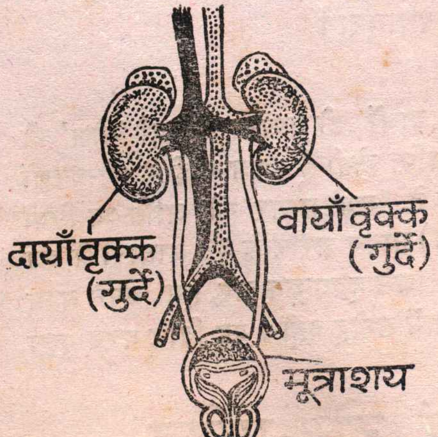

आँत (क्षुद्रान्त्र), १८. बड़ी आँत (वृहदान्त्र), १९. पेडू (नारी-शरीर में इस आधार में गर्भाशय एवं बीजाशय–दो आधार अन्तर्निहित हैं), २०. मूत्राशय, २१. मलाशय, २२. जनने-

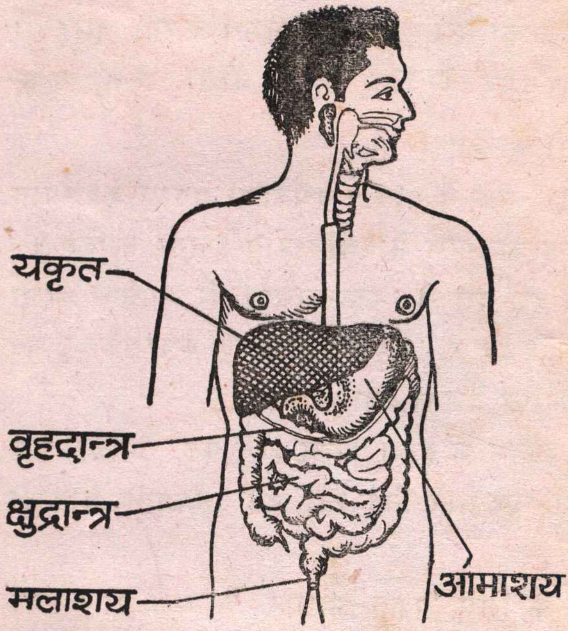

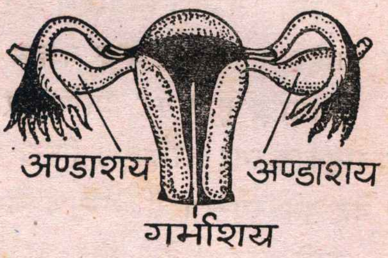

न्द्रिय, २३. जाँघें, २४. घुटने, २५. पिण्डली, २६. टखने, २७. पैर, २८. सम्पूर्ण शरीर का अभ्यन्तर भाग (इसमें सप्त-धातु से सम्बन्धित सप्ताधार समन्वित हैं), २९. बाह्याङ्ग, ३०. अग्र-भाग का आकाश, ३१. पृष्ठ-भाग का आकाश और ३२. सम्पूर्ण आकाश-मण्डल।

'ध्यान' के पहले चरण में उक्त ३२ आधारों में से किसी एक आधार में, दश-महा-विद्याओं में से किसी एक महा-विद्या की **ध्यान-मूर्त्ति** की देह से, 'ध्यान' के षोडश-वर्णों (रङ्गों) में से किसी एक 'वर्ण' (रङ्ग) का प्रकाश प्रस्फुटित होते देखना होता है। 'ध्यान' के सोलह प्रकार के 'वर्ण' (रङ्ग) इस प्रकार हैं—१ नील, २ पीत, ३ रक्त, ४ अरुण, ५ लाक्षा-रस, ६ श्वेत, ७ धूम्र, ८ नारङ्गी, ९ कपिश, १० हरित, ११ पाण्डु, १२ कृष्ण, १३ पिशङ्ग, १४ वभ्रु, १५ किम्भोर और १६ चित्र वर्ण।

'ध्यान' के दूसरे चरण में, 'ध्यान'-स्थल से प्रस्फुटित 'प्रकाश' को अपनी 'आज्ञा' द्वारा सम्पूर्ण देह में व्याप्त होते देखा जाता है। फिर सम्पूर्ण विश्व, आकाश-मण्डल को उससे ओत-प्रोत देखना होता है। इस प्रकार 'ध्यान' करने के फल-स्वरूप आश्चर्य-जनक ढङ्ग से साधक 'रोग'-मुक्त हो जाता है।

ज्वर-नाश, शिर-पोड़ा-निवारण हेतु 'सहस्रार'-चक्र में **नोल वर्णवाली महा-कालो** का ध्यान करना चाहिए। फिर, सम्पूर्ण देह, अङ्ग-अङ्ग को नोल वर्ण से ओत-प्रोत देखे। अपने से बाहर, संसार में भो सर्वत्र नोल वर्ण की नीलिमा का अनुभव करना चाहिए। **'वात-ज्वर'** के लिए गहरा नीला काश, **'पित्त-ज्वर'** के लिए हलका नोला काश, **'कफ-ज्वर'** के लिए नारङ्गी वर्ण को कल्पना करनी चाहिए।

कब्ज, अजीर्ण-निवारण हेतु 'सहस्रार'-चक्र में **पीत - वर्णवाली बगला** का ध्यान करना चाहिए। अङ्ग-प्रत्यङ्ग बाह्य वातावरण पोत-वर्ण से ओत-प्रोत देखना चाहिए।

शीताङ्ग होने पर, 'मणि-पुर' चक्र के दश दल में रक्त-आभावाली **भगवतो बाला** का आवाहन करना चाहिए। फिर, भगवती की देह से प्रस्फुटित रक्त-वर्ण-रूपो विद्युत् को अपनी देह की रग-रग में, सम्पूर्ण जगत् में, व्याप्त देखना चाहिए।

सर्दी, जकड़ी देह, निराशा, सुस्ती, जुकाम के द्वारा कष्ट होने पर, 'आज्ञा'-चक्र (द्वि-दल) में लाक्षा-रस से ओत-प्रोत, रक्त की रज-धार निकलतो हुई भगवती मातङ्गी का ध्यान करना चाहिए।

'यकृत'-सम्बन्धो रोगों के निवारण के लिए 'यकृत'-आधार के मध्य नोल वर्णा **भगवतो महा-काली** का ध्यान करना चाहिए। इससे सभी प्रकार के यकृत-दोष नष्ट हो जाते हैं। **जटिल वात-रोगों** के निवारण के लिए शरीर के अभ्यन्तर-आधार में **भैरवी**-रूप का प्रकाश देखना चाहिए। **हृदय-रोग** की शान्ति के लिए 'अनाहत'-चक्र के द्वादश-दल में नील-वर्णा **भगवतो कालो** का ध्यान करना चाहिए।

अर्श-निवारण हेतु छोटी आँत (क्षुद्रान्त्र), बड़ो आँत (वृहदान्त्र), मलाशय—आधारों में नील-वर्णा **भगवती महा-काली** का ध्यान करना चाहिए। यदि खून आ रहा हो, तो मलाशय-आधार में पीत-वर्णा **भगवतो बगला** का आह्वान करना चाहिए।

स्वप्न-दोष-निवारण हेतु 'सुषुम्णा' में नील-वर्णा **महा-काली** का ध्यान करना चाहिए। **'प्रमेह'-निवारण** हेतु 'सुषुम्णा' में प्रातः **बगला,** सायं **आद्या** का ध्यान करना चाहिए। जननेन्द्रिय आधार में **भगवती बाला** और सम्पूर्ण आभ्यन्तर शरीर में **भगवती बाला-बगला** का संयुक्त ध्यान कर वृद्धावस्था को जीत सकते हैं।

'साधना-शिविर' (रज-रप्पा) तीसरे एवं अन्तिम दिन की समाप्ति **'कौल-कल्पतरु' पं० देवीदत्त शुक्ल** द्वारा विरचित पुष्पाञ्जलि **'तेरी याद मात्र से होते सकल भय दूर'** (विनय-सुधा, पृ० ५७) के स-स्वर पाठ से। पाठ-कर्त्ता—**पं० विश्वनाथ पाण्डेय।**

• * •

नवार्ण-यन्त्र

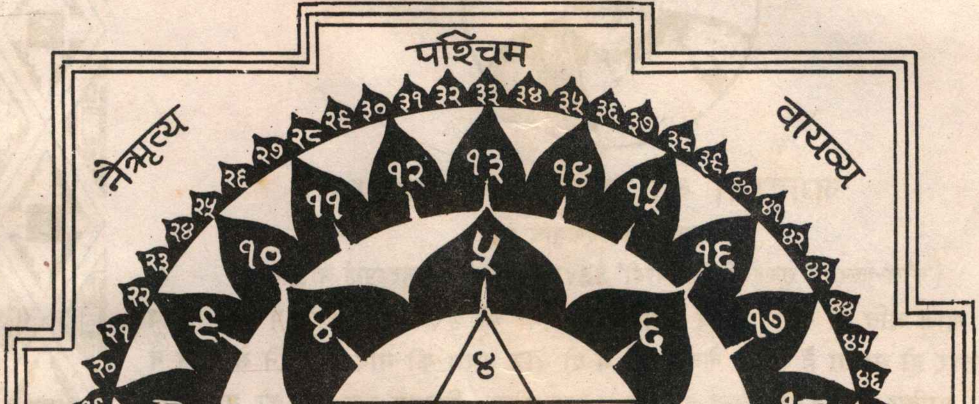

९/.

रजि० सं० ३२९८१/५७ रजि०सं० ए०डी० ९६

सम्पादक, प्रकाशक एवं मुद्रक : श्रीऋतशील शर्मा, परावाणी प्रेस, प्रयाग-२११ ००६

जगदम्बा की सामूहिक उपासना

कल्याण का एकमात्र मार्ग

('कौल-कल्पतरु' शुक्ल जी का 'चण्डी' १६४२ में प्रकाशित महत्त्वपूर्ण आह्वान)

आज अति ही दारुण समय उपस्थित है। माँ की शरण ग्रहण करने पर ही मानव का निस्तार हो सकता है। अब केवल वर्ष में दो बार माता की याद कर लेने से काम न चलेगा। चाहिए तो यह कि नित्य ही कुछ-न-कुछ समय निकाल कर माँ की याद अति श्रद्धा के साथ की जाय, परन्तु यदि यह सम्भव न हो, तो प्रति-मास शुक्ला अष्टमी को तो उनकी सेवा-पूजा में घण्टे-दो-घण्टे का समय अवश्य ही लगाया जाय।

क्या ही अच्छा हो, यदि प्रत्येक गाँव-शहर में किसी सुन्दर स्थान में शाक्त-बन्धु एकत्र होकर, घट-स्थापन-पूर्वक माँ का यजन-पूजन प्रारम्भ कर दें। घट-स्थापन-पूर्वक सविधि षोडशोपचार से माँ का पूजन कर चुकने पर जो ले , चण्डी' (श्रीदुर्गा सप्तशती) का पाठ कर सकते हों, 'चण्डी' का पाठ करें और जो पाठ न कर सकते हों, वे चुपचाप बैठ कर 'मन्त्र-जप' या 'नाम-जप' ही करें।

इस प्रकार जगदम्बा का यजन सामूहिक रूप से करने से लोक-कल्याण तो होगा ही, साथ ही परिवार-समाज में धार्मिक भावना का भी उदय होगा। ऐसा करने से ही आज कल्याण सम्भव है, दूसरा कोई उपाय नहीं है।

जगदम्बा की आराधना हेतु सद्यः फलदायी 'चण्डी' मासिक पत्रिका पढ़ें !